

॥ॐ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

॥श्री गणेशाय नमः॥

चाणक्यनीति दर्पणः





विषय सूची



आचार्य चाणक्य - संक्षिप्त जीवन परिचय

आचार्य चाणक्य नीति के सूक्ष्मदर्शी प्रणेता, और अर्थशास्त्र के विद्वान माने जाते हैं । आचार्य चाणक्य व्यव्हार से स्वाभिमानी, चरित्रवान तथा संयमी, स्वरुप से कुरूप, तीष्ण बुद्धि, दृढ प्रतिज्ञ, प्रतिभावान, युगदृष्टा और युगसृष्टा थे ।

आचार्य चाणक्य ने 300 वर्ष ईसापूर्व ऋषि चणक के पुत्र के रूप में जन्म लिया। वही उनके आरंभिक काल के गुरु थे। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि चणक केवल उनके गुरु थे। चणक के ही शिष्य होने के नाते उनका नाम चाणक्य पड़ा। उस समय का कोई प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। अतः इतिहासकारों ने प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अपनी-अपनी धारणाएं बनाई हैं। परंतु यह सर्वसम्मत है कि आचार्य चाणक्य की आरंभिक शिक्षा गुरु चणक द्वारा ही दी गई थी संस्कृत ज्ञान तथा वेद-पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन चाणक्य ने उन्हीं के निर्देशन में किया। चाणक्य मेधावी छात्र थे। गुरु उनकी शिक्षा ग्रहण करने की तीव्र क्षमता से अत्यंत प्रसन्न थे।

तीक्ष्ण बुद्धि चाणक्य ने किशोरावस्था में ही सभी धार्मिक ग्रंथों का ग्रहण कर लिया था। उच्च शिक्षा के लिए वह अपने निवासस्थान पाटलीपुत्र (पट्ना) से तक्षशीला प्रस्थान कर उन्होंने वहाँ विद्या प्राप्त की । अपने प्रौढ़ज्ञान से विद्वानों को प्रसन्न कर वे वहीं पर राजनीति के प्राध्यापक बने । लेकिन उनका जीवन, सदा आत्मनिरिक्षण में मग्न रहता था । देश की दुर्व्यवस्था देखकर उनका हृदय अस्वस्थ हो उठता; कलुषित राजनीति और सांप्रदायिक मनोवृत्ति से त्रस्त भारत का पतन उनसे सहन नहीं हो पाता था । अतः अपनी दूरदर्शी सोच से,



एक विस्तृत योजना बनाकर, देश को एकसूत्र में बाँधने का असामान्य प्रयास उन्होंने किया।

मगध के महामंत्री होने पर भी वे सामान्य कुटिया में रहते थे । चीन के प्रसिद्ध यात्री फाह्यान ने यह देखकर जब आश्चर्य व्यक्त किया, तब महामंत्री का उत्तर था "जिस देश का महामंत्री (प्रधानमंत्री-प्रमुख) सामान्य कुटिया में रहता है, वहाँ के नागरिक भव्य भवनों में निवास करते हैं; पर जिस देश के मंत्री महालयों में निवास करते हैं, वहाँ की जनता कुटिया में रहती है । राजमहल की अटारियों में, जनता की पीडा का आर्तनाद सुनायी नहीं देता ।"

आचार्य चाणक्य का मानना था कि `बुद्धिर्यस्य बलं तस्य`। वे पुरुषार्थवादी थे; `दैवाधीनं जगत्सर्वम्` इस सिद्धांत को मानने के लिए कदापि तैयार नहीं थे । सार्वजनिन हित और महान ध्येय की पूर्ति में प्रजातंत्र या लोकशिक्षण अनिवार्य है, पर पर्याप्त नहीं ऐसा उनका स्पष्ट मत था । देश के शिक्षक, विद्वान और रक्षक – निःस्पृही, चतुर और साहसी होने चाहिए । स्वजीवन और समाजव्यवहार में उन्नत नीतिमूल्य का आचरण ही श्रेष्ठ है; किंतु, स्वार्थपरायण सत्तावान या वित्तवानों से, आवश्यकता पडने पर वज्रकुटिल बनना चाहिए – ऐसा उनका मत था । इसी कारण वे "कौटिल्य" कहलाये ।

आचार्य चाणक्य ने राजनीति, कूटनीति, अर्थनीति आदि से लेकर व्यक्तिगत जीवन की व्यवहारिकता, मित्र – शत्रुभेद और नारी के विषय में जो कुछ लिखा है वह सदेव सदेव के लिए प्रेरणा और ज्ञान का भंडार बना रहेगा |

आचार्य चाणक्य एक ऐसी महान विभूति थे, जिन्होंने अपनी विद्वत्ता और क्षमताओं के बल पर भारतीय इतिहास की धारा को बदल दिया।



मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चाणक्य कुशल राजनीतिज्ञ, चतुर कूटनीतिज्ञ, प्रकांड अर्थशास्त्री के रूप में भी विश्वविख्यात हुए। इतनी सदियाँ गुजरने के बाद आज भी यदि चाणक्य के द्वारा बताए गए सिद्धांत और नीतियाँ प्रासंगिक हैं तो मात्र इसलिए क्योंकि उन्होंने अपने गहन अध्ययन, चिंतन और जीवानानुभवों से अर्जित अमूल्य ज्ञान को, पूरी तरह नि:स्वार्थ होकर मानवीय कल्याण के उद्देश्य से अभिव्यक्त किया। वर्तमान दौर की सामाजिक संरचना, भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था और शासन-प्रशासन को सुचारू ढंग से बताई गई नीतियाँ और सूत्र अत्यधिक कारगर सिद्ध हो सकते हैं।

चाणक्य-नीतिदर्पण ग्रंथ में, आचार्य ने प्राचीन ज्ञान, वैदिक ग्रंथो और धर्म शास्त्रों में वर्णित ज्ञान का साररूप वर्णन, सूत्रों एवं श्लोकों के रूप में किया है ।

स्मृतिरुप होने के कारण, कुछ सूत्रों एवं श्लोकों को, ईसा पूर्व भारत में विद्यमान परिस्थितियों एवं लेखक के विचारों के अनुसार यथोचित न्याय और संदर्भ देने का प्रयास अनिवार्य होगा, अन्यथा आचार्य चाणक्य के विचारों की अनुचित व्याख्या हो पाना अत्यंत संभव है ।

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय:।।



चाणक्य नीति दर्पण:

प्रथमोऽध्याय:

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम्।
नाना शास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीति समुच्चयम्।। ।।१।।

सर्वशक्तिमान तीनो लोको के पालन करता भगवान विष्णु को प्रणाम करते हुए, अनेक शास्त्रों का आधार ले कर मैं यह सूत्र एक राज्य के लिए नीतिशास्त्र के सिद्धांतों को कहता हूँ। ।।१।।

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः।
धर्मोपदेशविश्यातं कार्याऽकार्याशुभाशुभम्।। ।।२।।

जो व्यक्ति शास्त्रों के सूत्रों का अभ्यास करके ज्ञान ग्रहण करेगा उसे अत्यंत वैभवशाली कर्तव्यो के सिद्धांत प्राप्त होंगे। उसे ज्ञान होगा कि किन बातो का अनुसरण करना चाहिए और किनका नहीं करना चाहिए। उसे बुरे – भले का ज्ञान होगा और उसे सर्वोत्तम ज्ञान भी प्राप्त होगा। ।।२।।

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।
येन विज्ञान मात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते।। ।।३।।

अत: लोगों की भलाई के लिए मैं उस बात को कहता हूँ जिनसे लोग सभी बातों का परीक्षण कर सकेंगे। ।।३।।

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टास्त्रीभरणेन च।



दुःखितैः सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति।। ।।४।।

एक विद्वान व्यक्ति भी दुखी हो जाता है - यदि वह किसी मूर्ख को उपदेश देता है, यदि वह एक दुष्ट पत्नी का पालन करता है या किसी दुखी व्यक्ति के साथ अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध बना कर रखता है। ।४।।

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः।। ।।५।।

दुष्ट पत्नी, झूठे मित्र, बदमाश नौकर या सर्प के साथ निवास करना साक्षात् मृत्यु के समान है। ।।५।।

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।। ।।६।।

व्यक्ति को आने वाली मुसीबतो का सामना करने के लिए धन संचय करना चाहिए। उसे धन-सम्पदा त्यागकर भी अपनी पत्नी की सुरक्षा करनी चाहिए। लेकिन आत्मा की सुरक्षा की के लिए धन और पत्नी दोनो का त्याग भी उचित है। ।।६।।

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतांकुतः किमापदः।
कदाचिच्चलिता लक्ष्मी संचिताऽपि विनश्यति।। ।।७।।

सभी को भविष्य में आने वाली मुसीबतो के लिए धन एकत्रित करना चाहिए। कभी ऐसा ना सोचें की धनवान व्यक्ति को मुसीबत कैसी? क्योकि जब धन साथ छोड़ता है तो संचय किया हुआ धन भी तेजी से घटने लगता है। ।।७।।



यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवाः।
न च विद्यागमोऽप्यस्ति वासस्तत्र न कारयेत्।। ।।८।।

उस देश मे कभी निवास न करें जहाँ आपकी कोई ईज्जत न हो, जहाँ आप के लिए कोइ रोजगार न हो, जहा आपका कोई मित्र न हो और जहाँ आप कोई ज्ञान आर्जित न कर सके। ।।८।।

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसे वसेत।। ।।९।।

ऐसी जगह एक दिन भी निवास नहीं करना चाहिए जहाँ - कोई धनवान व्यक्ति ना हो, कोई ब्राह्मण ना हो जो वैदिक शास्त्रों में निपुण हो, कोई राजा न हो, कोई नदी न हो, और कोई चिकित्सक ना हो। ।।९।।

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र संगतिम्।। ।।१०।।

बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे देश कभी ना जाए जहाँ, रोजगार कमाने का कोई अवसर नहीं हो, लोगों को किसी बात का भय नहीं हो,लोगो को किसी बात की लज्जा नहीं हो, लोग बुद्धिमान नहीं हो और लोगो की वृत्ति दान धर्म करने की ना हो। ।।१०।।

जानीयात्प्रेषणेभृत्यान् बान्धवान्व्यसनाऽऽगमे।
मित्रं याऽऽपत्तिकालेषु भार्या च विभवक्षये।। ।११।।

नौकर की परीक्षा तब करें जब वह अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर रहा हो, रिश्तेदार की परीक्षा तब करनी चाहिए जब आप मुसीबत मे



घिरें हों, मित्र की परीक्षा विपरीत परिस्थितियों मे करनी चाहिए, और जब आपका वक्त अच्छा न चल रहा हो तब पत्नी की परीक्षा करनी चाहिए। ।।११।।

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसण्कटे।
राजद्वारे श्मशाने च यात्तिष्ठति स बान्धवः।। ।।१२।।

अच्छे मित्र वही है जो उन परिस्थितियों में भी साथ ना त्यागे - जब हमें उसकी आवश्यकता हो, जब कोई दुर्घटना हो जाये, जब देश में अकाल पड़ा हो,जब युद्ध चल रहा हो, जब हमे राजा के सामने दरबार मे जाना हो और जब हमे शमशान घाट जाना हो। ।।१२।।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवं परिसेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति चाध्रुवं नष्टमेव तत्।। ।।१३।।

जो व्यक्ति किसी नाशवान वस्तु के लिए अविनाशी वस्तु को छोड़ देता है, तो उसके हाथ से अविनाशी वस्तु तो चली ही जाती है और इसमे कोई शंका नहीं है की नाशवान वस्तु को भी वह खो देता है। ।।१३।।

वरयेत्कुलजां प्राज्ञो निरूपामपि कन्यकाम्।
रूपवतीं न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले।। ।।१४।।

एक बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए की वह एक इज्जतदार घर की अविवाहित कन्या से ही विवाह करे, भले ही उस कन्या में कोई दोष हो। उसे अपनी परिस्थिति से नीचे घर में विवाह नहीं करना चाहिए चाहे कन्या अत्यंत सुन्दर भी क्यों ना हो | शादी-विवाह हमेशा बराबरी के घरों मे ही करना चाहिए। ।।१४।।



नखीनां च नदीनां च शृङ्गीणां शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकालेषु च।। ।।१५।।

चार चीजो पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए- नदियां, अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित व्यक्ति, नाखून और सींग वाले पशु, स्त्रियां और राज घराने के मनुष्य। ।।१५।।

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम्।
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।। ।।१६।।

इन चार चीजो को हमेशा याद रखे - यदि विष में से भी अमृत निकालना संभव हो तो उसे निकल लें, यदि सोना गन्दगी में भी पड़ा हो तो भी उसे धो कर अपनायें, ज्ञान यदि निचले कुल में जन्मे व्यक्ति से मिले चाहे वह दूषित कुल की कन्या से ही क्यों न हो उसे ग्रहण कर ले चाहिए। ।।१६।।

स्त्रीणां द्विगुण अहारो लज्जा चापि चतुर्गुणा।
साहसं षड्गुणं चैव कामश्चाष्टगुणः स्मृतः।। ।।१७।।

महिलाओं में पुरुषों की तुलना में भूख दो गुना होती है, लज्जा चार गुना होती है, साहस छः गुना होता है और और काम आठ गुना होता है। ।।१७।।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे प्रथमोऽध्यायः॥



चाणक्य नीति दर्पणः

द्वितीयोऽध्यायः

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभिता।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः।। ।।१।।

झूठ बोलना, कठोरता, छल करना, अपवित्रता और निर्दयता ये औरतों के कुछ नैसर्गिक दुर्गुण है। ।।१।।

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर वराङ्गना।
विभवो दानशक्तिश्च नाऽल्पस्य तपसः फलम्।2।

भोजन के योग्य पदार्थ और भोजन करने की क्षमता, सुन्दर स्त्री और उसे भोगने की शक्ति, पर्याप्त धनराशी तथा दान देने की भावना - ऐसे संयोगों का होना सामान्य तप का फल नहीं है। ।।२।।

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दानुगामिनी।
विभवे यस्य सन्तुष्टिस्तस्य स्वर्ग इहैव हि।। ।।३।।

जिस व्यक्ति का पुत्र आज्ञाकारी है, जिसकी पत्नी उसकी इच्छा के अनुरूप व्यव्हार करती है और जिसे अपने धन पर संतोष है, उस व्यक्ति के लिए धरती ही स्वर्ग के सामान है। ।।३।।

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः सः पिता यस्तु पोषकः।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः सा भार्या या निवृतिः।। ।।४।।



पुत्र वही है जो पिता का कहना मानता हो, पिता वही है जो पुत्रों का पालन-पोषण करे, मित्र वही है जिस पर आप विश्वास कर सकते हों और पत्नी वही है जिससे सुख प्राप्त हो। ।।४।।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।। ।।५।।

ऐसे मित्र जो आपके मुह पर तो मीठी बातें करते हैं, लेकिन आपके पीठ पीछे आपको हानि पहुँचाने करने की योजना बनाते है या आपकी बुराई करते हैं उन्हें त्याग देना ही उचित है क्योंकि ऐसा करने वाले मित्र उस विष के घड़े के समान है जिसकी उपरी सतह दूध से भरी है परन्तु जिसके पेट में विष भरा है। ।।५।।

न विश्वसेत्कुमित्रे च मित्रे चापि न विश्वसेत्।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत्।। ।।६।।

एक बुरे मित्र पर तो कभी विश्वास करना ही नहीं चाहिए, एक अच्छे मित्र पर भी अत्यधिक विश्वास ना करें। क्योंकि ऐसे लोग आपसे रुष्ट होने पर आप के सभी रहस्य खोल सकते हैं। ।।६।।

मनसा चिन्तितं कार्यं वाचा नैव प्रकाशयेत्।
मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं कार्य चापि नियोजयेत्।। ।।७।।

मन में सोचे हुए कार्य को किसी के सामने प्रकट न करें अपितु उसकी सुरक्षा करते हुए उसे कार्य में परिणत कर दें। ।।७।।

कष्टं च खलु मूर्खत्वं कष्ट च खलु यौवनम्।
कष्टात्कष्टतरं चैव परगृहेनिवासनम्।। ।।८।।



मुर्खता दुखदायी है, जवानी भी दुखदायी है,लेकिन इन सबसे कहीं ज्यादा दुखदायी किसी दुसरे के घर जाकर उसका अनुग्रह लेना है। ।।८।।

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने।। ।।९।।

हर पर्वत पर माणिक्य नहीं होते, हर हाथी के सर पर मणी नहीं होता, सज्जन पुरुष भी हर जगह नहीं होते और हर वन मे चन्दन के वृक्ष भी नहीं होते हैं। ।।९।।

पुनश्च विविधैः शीलैर्नियोज्या सततं बुधैः।
नीतिज्ञा शीलसम्पन्नाः भवन्ति कुलपूजिताः।। ।।१०।।

बुद्धिमान पिता को अपने पुत्रों को शुभ गुणों की सीख देनी चाहिए क्योंकि नीतिज्ञ और ज्ञानी व्यक्तियों की ही कुल में पूजा होती है। ।।१०।।

माता शत्रुः पिता वैरी येनवालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा।। ।।११।।

जो माता व् पिता अपने बच्चों को शिक्षा नहीं देते है वो तो बच्चों के शत्रु के सामान हैं। क्योंकि वे विद्याहीन बालक विद्वानों की सभा में वैसे ही तिरस्कृत किये जाते हैं जैसे हंसो की सभा मे बगुले। ।।११।।

लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद् बहवो गुणाः।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत्।। ।।१२।।



अत्यधिक लाड-प्यार से बच्चों में गलत आदतें पड़ती हैं, उन्हें कड़ी शिक्षा देने से वे अच्छी आदते सीखते है, इसलिए यदि आवश्यक हो तो बच्चों को दण्डित करने में संकोच न करें। ।।१२।।

श्लोकेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धाऽर्द्धक्षरेण वा।
अबन्ध्यं दिवसं कुर्याद् दानाध्ययनकर्मभि।। ।।१३।।

ऐसा एक भी दिन नहीं जाना चाहिए जब आपने एक श्लोक, आधा श्लोक, चौथाई श्लोक, या श्लोक का केवल एक अक्षर नहीं सीखा, या आपने दान, अभ्यास या कोई पवित्र कार्य नहीं किया। ।।१३।।

कान्तावियोग स्वजनापमानो ऋणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा
दरिद्रभावो विषया सभा च विनाग्निमेते प्रदहन्ति कायम्।। ।।१४।।

पत्नी का वियोग होना, आपने ही लोगो से अपमानित होना, बचा हुआ ऋण, दुष्ट राजा की सेवा, गरीबी एवं दरिद्रों की सभा - ये छह बातें शरीर को बिना अग्नि के ही जला देती हैं। ।।१४।।

नदीतीरे च ये वृक्षाः परगेहेषु कामिनी।
मन्त्रिहीनाश्च राजानः शीघ्रं नश्यन्त्यसंशयम्।। ।।१५।।

नदी के किनारे वाले वृक्ष, दुसरे व्यक्ति के घर मे रहने वाली स्त्री एवं बिना मंत्रियों का राजा - ये सब निश्चय ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। ।।१५।।

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञाः सैन्यं बलं तथा।
बलं वित्तं च वैश्यानां शूद्राणां च कनिष्ठता।। ।।१६।।



एक ब्राह्मण का बल तेज और विद्या है, एक राजा का बल उसकी सेना है, एक वैश्य का बल उसकी दौलत है तथा एक शुद्र का बल उसकी सेवा परायणता है। ।।१६।।

निर्धनं पुरुषं वेश्यां प्रजा भग्नं नृपं त्यजेत्।
खगाः वीतफलं वृक्षं भुक्तवा चाभ्यागतो गृहम्।। ।।१७।।

वेश्या को निर्धन व्यक्ति को त्याग देना चाहिए, प्रजा को पराजित राजा को त्याग देना चाहिए, पक्षियों को फलरहित वृक्ष त्याग देना चाहिए एवं अतिथियों को भोजन करने के पश्चात् यजमान का घर त्याग देना चाहिए। ।।१७।।

गृहीत्वा दक्षिणां विप्रास्त्यजन्ति यजमानकम्।
प्राप्तविद्या गुरुं शिष्याः दग्धारण्यं मृगास्तथा।। ।।१७।।

ब्राह्मण दक्षिणा मिलने के पश्चात् आपने यजमानो को छोड़ देते है, शिष्य विद्या प्राप्ति के बाद गुरु को छोड़ जाते हैं और पशु जले हुए वन को त्याग देते हैं। ।।१७।।

दुराचारी च दुर्दृष्टिर्दुराऽऽवासी च दुर्जनः।
यन्मैत्री क्रियते पुम्भिर्नरः शीघ्र विनश्यति।। ।।१९।।

जो व्यक्ति दुराचारी, कुदृष्टि वाले, एवं बुरे स्थान पर रहने वाले मनुष्य के साथ मित्रता करता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।।।१९।।

समाने शोभते प्रीती राज्ञी सेवा च शोभते।
वाणिज्यं व्यवहारेषु स्त्री दिव्या शोभते गृहे।। ।।२०।।



प्रेम और मित्रता बराबर वालों में अच्छी लगती है, राजा के यहाँ नौकरी करने वाले को ही सम्मान मिलता है, व्यवसायों में वाणिज्य सबसे अच्छा है, अवं उत्तम गुणों वाली स्त्री अपने घर में सुरक्षित रहती है। ।।२०।।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे द्वितीयोऽध्यायः॥



चाणक्य नीति दर्पणः

तृतीयोऽध्यायः

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः ।
व्यसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम्॥ ।।१।।

इस दुनिया मे ऐसा किसका घर है जिस पर कोई कलंक नहीं, वह कौन है जो रोग और दुख से मुक्त है। ऐसा कौन है जो सदा सुखी रहता है? ।।१।।

आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम्।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्॥ ।।२।।

मनुष्य के आचरण से उसके कुल की ख्याति बढ़ती है, मनुष्य के बोल चाल से उसके देश की ख्याति बढ़ती है, मान सम्मान उसके प्रेम को बढ़ता है, एवं उसके शरीर का विकास उसके भोजन से होता है। ।।२।।

सुकुले योजयेत्कन्यां पुत्रं विद्यासुयोजयेत्।
व्यसनेयोजयेच्छत्रुं मित्रं धर्मेण योजयेत्॥ ।।३।।

कन्या का विवाह अच्छे कुल में करना चाहिए, पुत्र को अच्छी शिक्षा देनी चाहिए, शत्रु को आपत्ति और कष्टों में डालना चाहिए एवं मित्रों को धर्म कर्म में लगाना चाहिए। ।।३।।

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः ।
सर्पो दंशति कालेतुदुर्जनस्तु पदे पदे ॥ ।।४।।



एक दुर्जन और एक सर्प मे यह अंतर है की साँप तभी डसेगा जब उसकी जान को खतरा हो लेकिन दुर्जन पग पग पर हानि पहुचने की कोशिश करेगा। ।।४।।

एतदर्थेकुलीनानां नृपाः कुर्वन्ति सङ्ग्रहम्।
आदिमध्यावसानेषुन तेगच्छन्ति विक्रियाम्॥ ।।५।।

राजा अच्छे कुल के लोगो को अपने आस पास इसलिए रखते है क्योंकि ऐसे लोग ना आरम्भ मे, ना बीच मे और ना ही अंत मे ही साथ छोड़कर जाते है। ।।५।।

प्रलयेभिन्नमर्यादा भवन्ति किल सागराः ।
सागरा भेदमिच्छन्ति प्रलयेऽपि न साधवः ॥ ।।६।।

जब प्रलय का समय आता है तो समुद्र भी अपनी मर्यादा छोड़कर किनारों को तोड़ देते हैं, लेकिन सज्जन पुरुष प्रलय के सामान भयंकर आपत्ति अवं विपत्ति में भी आपनी मर्यादा नहीं छोड़ते। ।।६।।

मूर्खस्तुप्रहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः ।
भिद्यतेवाक्य-शल्येन अदृशं कण्टकं यथा ॥ ।।७।।

मूर्खो के साथ मित्रता नहीं रखनी चाहिए उन्हें त्याग देना ही उचित है, क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से वे दो पैरों वाले पशु के सामान हैं,जो अपने धारदार वचनो से वैसे ही हदय को छलनी करता है जैसे अदृश्य काँटा शरीर में घुसकर छलनी करता है। ।।७।।

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।



विद्याहीना न शोभन्तेनिर्गन्धाः किंशुका यथा ॥ ।।८।।

रूप और यौवन से सम्पन्न तथा कुलीन परिवार में जन्म लेने पर भी विद्या हीन पुरुष उस पलाश के फूल के समान है जो दिखने में तो सुन्दर है, परन्तु खुशबु से रहित हैं। ।।८।।

कोकिलानां स्वरो रूपं स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम्।
विद्या रूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम्॥ ।।९।।

कोयल की सुन्दरता उसके गायन मे है। स्त्री की सुन्दरता पतिव्रत है। कुरूप की सुन्दरता उसके ज्ञान में है तथा तपस्वी की सुन्दरता उसकी क्षमाशीलता में है। ।।९।।

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थेकुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थेआत्मार्थेपृथिवीं त्यजेत्॥ ।।१०।।

कुल की रक्षा के लिए एक सदस्य का बिलदान देना ,गाँव की रक्षा के लिए एक कुल का बिलदान देना , देश की रक्षा के लिए एक गाँव का बिलदान देना तथा आत्मा की रक्षा के लिए देश का बिलदान देना उचित है। ।।१०।।

उद्योगेनास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम्।
मौनेन कलहो नास्ति नास्ति जागरितेभयम्॥ ।।११।।

जो उद्यमशील हैं, वे गरीब नहीं हो सकते, जो हरदम भगवान को याद करते है उनहे पाप नहीं छू सकता , जो मौन रहते है वो झगड़ों मे नहीं पड़ते और जो जागृत रहते है वो निर्भय होते है। ।।११।।

अतिरूपेण वा सीता अतिगर्वेण रावणः ।



अतिदानाद्बलिर्बद्धो ह्यतिसर्वत्र वर्जयेत्॥ ।।१२।।

आत्याधिक सुन्दरता के कारण सीता का हरण हुआ, अत्यंत घमंड के कारण रावण का अंत हुआ, अत्यधिक दान देने के कारण राजा बलि को बंधन में बंधना पड़ा, अतः सर्वत्र अति को त्यागना ही उचित है। ।।१२।।

को हि भारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सुविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्॥ ।।१३।।

समर्थ के लिए कौन सा कार्य कठिन है ? व्यापार / रोजगार के लिए कौन सी जगह दूर है ? विद्वानों के लिए कोई देश विदेश नहीं है, मधुभाषियों का कोई शत्रु नहीं है। ।।१३।।

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।
वासितं तद्वनं सर्वंसुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ।।१४।।

जिस तरह सारा वन केवल एक ही पुष्प एवं सुगंध भरे वृक्ष से महक जाता है उसी तरह एक ही गुणवान पुत्र पुरे कुल का नाम बढाता है। ।।१४।।

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यतेतद्वनं सर्वंकुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ।।१५।।

जिस प्रकार केवल एक सुखा हुआ जलता वृक्ष सम्पूर्ण वन को जला देता है उसी प्रकार एक ही कुपुत्र सरे कुल के मान, मर्यादा और प्रतिष्ठा को नष्ट कर देता है। ।।१५।।

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना ।
आह्लादितं कुलं सर्वंयथा चन्द्रेण शर्वरी ॥ ।।१६।।



विद्वान एवं सदाचारी एक ही पुत्र के कारण सम्पूर्ण परिवार वैसे ही खुशहाल रहता है जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर रात्रि जगमगा उठती है। ।।१६।।

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसन्तापकारकैः ।
वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्राम्यतेकुलम् ॥ ।।१७।।

ऐसे अनेक पुत्र किस काम के जो केवल दुःख और निराशा पैदा करें, इनसे तो वह एक ही पुत्र अच्छा है जो सम्पूर्ण घर को सहारा और शांति प्रदान करता है। ।।१७।।

लालयेत्पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्तेतुषोडशेवर्षे पुत्रेमित्रवदाचरेत्॥ ।।१८।।

पांच वर्ष तक पुत्र को लाड एवं प्यार से पालन करना चाहिए, दस साल तक उसे डांटना चाहिए। परन्तु जब वह १६ साल का हो जाए तो उससे मित्र के समान व्यवहार करे। ।।१८।।

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे ।
असाधुजनसम्पर्केयः पलायेत्स जीवति ॥ ।।१९।।

वह व्यक्ति सदा सुरक्षित रह सकता है जो भयावह आपदा, विदेशी आक्रमण, भयंकर अकाल और दुष्ट व्यक्ति के संग के समय पलायन कर जाये। ।।१९।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥ ।।२०।।



जो व्यक्ति अपने जीवन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अर्जित नहीं करता उसको मृत्युलोक में अनेकों बार जन्म लेकर भी केवल मरने का ही लाभ प्राप्त होता है। ।।२०।।

मूर्खायत्र न पूज्यन्तेधान्यं यत्र सुसञ्चितम्।
दाम्पत्येकलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ॥ ।।२१।।

धन की देवी लक्ष्मी स्वयं वहां चली आती है जहाँ मूर्खों का सम्मान नहीं होता, अनाज का अच्छा भंडारण किया जाता है और पति पत्नी में झगड़ा नहीं होता। ।।२१।।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे तृतीयोऽध्यायः॥



चाणक्य नीति दर्पण:

चतुर्थः अध्याय:

आयुः कर्मच वित्तं च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्तेगर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ ।।१।।

यह बातें माता के गर्भ में ही निश्चित हो जाती है, मनुष्य कितने वर्ष जीवित रहेगा, वह किस प्रकार के कर्म करेगा, उसके पास कितनी संपत्ति होगी और उसकी मृत्यु कब होगी। ।।१।।

साधुभ्यस्तेनिवर्तन्तेपुत्रमित्राणि बान्धवाः ।
येच तैः सह गन्तारस्तद्धर्मात्सुकृतं कुलम् ॥ ।।२।।

पुत्र, मित्र, सगे सम्बन्धी साधुओं से निवृत हो जाते हैं अर्थात उनकी आसकती छूट जाती हैं। परन्तु जो लोग साधुओं का अनुसरण करते है उनमे भक्ति जागृत होती है और उनके उस पुण्य से उनका सारा कुल धन्य हो जाता है। ।।२।।

दर्शनध्यानसंस्पर्शैर्मत्सी कूर्मी च पक्षिणी ।
शिशुंपालयतेनित्यं तथा सज्जन-संगतिः ॥ ।।३।।

जैसे मछली दृष्टी से, कछुआ ध्यान देकर और पंछी स्पर्श करके अपने बच्चो को पालन पोषण करते हैं।   वैसे ही संतजन पुरुषों की संगति मनुष्य का पालन पोषण करती है। ।।३।।

यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः ।



तावदात्महितं कुर्यात्प्राणान्ते किं करिष्यति ॥ ।।४।।

जब आपका शरीर स्वस्थ है और आपके नियंत्रण में है उसी समय आत्मसाक्षात्कार का उपाय कर लेना चाहिए क्योंकि मृत्यु हो जाने के बाद कोई कुछ नहीं कर सकता है। ।४।।

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकालेफलदायिनी ।
प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तं धनं स्मृतम्॥ ।।५।।

विद्या अर्जन करना यह एक कामधेनु के समान है जो हर मौसम में अमृत प्रदान करती है। वह विदेश में माता के समान रक्षक एवं हितकारी होती है, इसलिए विद्या को एक गुप्त धन कहा जाता है। ।।५।।

एकोऽपि गुणवान्पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम्।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च ताराः सहस्रशः ॥ ।।६।।

सैकड़ों गुणरहित पुत्रों की अपेक्षा एक गुणी पुत्र है क्योंकि एक चन्द्रमा ही रात्रि के अन्धकार को भगाता है, असंख्य तारे कभी यह काम नहीं कर सकते। ।।६।।

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातमृतो वरः ।
मृतः स चाल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत् ॥ ।।७।।

एक ऐसा बालक जो जन्मते वक़्त मृत था, एक मूर्ख दीर्घायु बालक से बेहतर है। पहला बालक तो एक क्षण के लिए दुःख देता है, दूसरा बालक उसके माँ बाप को जिंदगी भर दुःख की अग्नि में प्रताड़ित करता है। ।।७।।



कुग्रामवासः कुलहीनसेवा कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या विनाग्निना षट्प्रदहन्ति कायम्॥ ।।८।।

कुग्राम में वास, नीचकुल की सेवा, कुभोजन, कलहकारिणी स्त्री, मूर्ख पुत्र तथा विधवा कन्या यह छह बिना आग के ही शरीर को जलाती हैं ।।८।।

किं तया क्रियतेधेन्वा या न दोग्ध्री न गर्भिणी ।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान्॥ ।।९।।

वह गाय किस काम की जो ना तो दूध देती है ना तो बच्चे को जन्म देती है। उसी प्रकार उस बच्चे का जन्म किस काम का जो ना ही विद्वान हुआ ना ही भक्त हुआ। ।।९।।

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रान्तिहेतवः ।
अपत्यं च कलत्रं च सतां सङ्गतिरेव च ॥ ।।१०।।

जब व्यक्ति जीवन के दुःख से झुलसता है उसे केवल, पुत्र, पुत्री, पत्नी और भगवान् के भक्त ही सहारा देते है। ।।१०।।

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः ।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्तेत्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥ ।।११।।

राजा केवल एक ही बार आज्ञा देतें हैं, पंडित केवल एक बार ही बोलते हैं तथा कन्या का विवाह एक ही बार किया जाता है; यह सब कार्य एक ही बार होता है। ।।११।।

एकाकिना तपो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः ।
चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पञ्चभिर्बहुभी रणः ॥ ।।१२।।



यदि आप तप करते है तो अकेले करें , अभ्यास करते है तो दूसरे के साथ करें , गायन करते है तो तीन लोग करें, कृषि चार लोग करें और युद्ध अनेक लोग मिलकर करें। ।।१२।।

सा भार्याया शुचिर्दक्षा सा भार्याया पतिव्रता ।
सा भार्याया पतिप्रीता सा भार्यासत्यवादिनी ॥ ।।१३।।

वही भार्या (पत्नी) है जो पवित्र और चतुर है, वही भार्या है जो पतिव्रता है, वही भार्या है जिस पर पति की प्रीति है, कही भार्या है जो सत्य बोलती है।

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्त्वबान्धवाः ।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्या दरिद्रता ॥ ।।१३।।

पुत्रहीन व्यक्ति का घर उजाड़ है। जिसे कोई सम्बन्धी नहीं है उसकी सभी दिशाएँ उजाड़ है। मूर्ख व्यक्ति का ह्रदय उजाड़ है और निर्धन व्यक्ति का सब कुछ उजाड़ है। ।।१४।।

अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णेभोजनं विषम्।
दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम्॥ ।।१५।।

बिना अभ्यास के शास्त्र विष है, बिना पचे भोजन विष है। निर्धनों के लिए उत्सव विष है और वृद्ध के लिए युवती स्त्री विष है। ।।१५।।

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत्।
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यांनिःस्नेहान्बान्धवांस्त्यजेत्॥ ।।१६।।



दयारहित धर्म को त्यागना उचित है। विद्याहीन गुरु को त्यागना उचित है। सदा कुपित रहने वाली पत्नी को त्यागना उचित है। तथा बिना प्रीति के बांधवों को त्यगना भी उचित है। ।।१६।।

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा ।
अमैथुनं जरा स्त्रीणां वस्त्राणामातपो जरा ॥ ।।१७।।

सतत भ्रमण करने वाला बूढा जो जाता है। हमेशा बंधा रहने वाला घोडा बूढा हो जाता है। प्रणय रहित स्त्री यदि स्त्री बूढी हो जाती है। धूप में पड़े रहने से कपडे पुराने हो जाते है। ।।१७।।

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययागमौ ।
कश्चाहं का च मेशक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥ ।।१८।।

कैसा या कौन सा काल है , मेरे कौन मित्र हैं, कैसा या कौन सा देश है, मेरी आमदनी और खर्चे क्या है, मैं कौन हूँ और मेरी कौन से शक्ति हैं, यह मनुष्य को बार बार अर्थात सदैव विचारना चाहिए। ।।१८।।

अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम् ।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनः ॥ ।।१९।।

द्विजों के देवता अग्नि हैं। ऋषि मुनियों के ह्रदय में देवता हैं। अल्पबुद्धियों के लिए मूर्तियों में तथा तथा समदर्शियों के लिए सर्वत्र देवता हैं। ।।१९।।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे चतुर्थोऽध्यायः॥



चाणक्य नीति दर्पणः

पंचमोऽध्यायः

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥ ।।१।।

द्विजों का गुरु अग्नि है। चारों वर्णों का गुरु ब्राह्मण है। स्त्रियों का गुरु पति यही और सबका गुरु अभ्यागत है। ।।१।।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥ ।।२।।

सोने की परख उसे घिस कर, काट कर, गरम कर के और पीट कर की जाती है। वैसे ही दान, शील, गुण और आचार , इन चारों से पुरुष की परीक्षा होती है। ।।२।।

तावद्भयेषुभेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तुभयं वीक्ष्य प्रहर्तव्यमशङ्कया ॥ ।।३।।

तब तक भय से डरना चाहिए, कब तक भय उत्पन्न न हुआ हो। परन्तु यदि भय उत्पन्न हो जाये तब उस पर प्रहार कारण यही उचित है। ।।३।।

एकोदरसमुद्भूता एकनक्षत्रजातकाः ।
न भवन्ति समाः शीलेयथा बदरकण्टकाः ॥ ।।४।।



अनेक व्यक्ति जो एक ही गर्भ से पैदा हुए है या एक ही नक्षत्र में पैदा हुए है वे एकसे नहीं होते। उसी प्रकार जैसे बेर के झाड के सभी बेर एक से नहीं होते। ।।४।।

निःस्पृहो नाधिकारी स्यान्नाकामो मण्डनप्रियः ।
नाविदग्धः प्रियं ब्रूयात्स्पष्टवक्ता न वञ्चकः ॥ ।।५।।

अधिकारी निःस्पृह नहीं होते, अर्थात अधिकार प्राप्त करने वाला निस्वार्थ भाव से काम करने वाला नहीं हो सकता। श्रृंगार का प्रेमी अकाम नहीं हो सकता। चतुर प्रियवादी नहीं हो सकता और स्पष्ट कहने वाला धोखा नहीं दे सकता। ।।५।।

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या अधनानां महाधनाः ।
परांगना कुलस्त्रीणां सुभगानां च दुर्भगाः ॥ ।।६।।

मूढ़ लोग बुद्धिमानो से इर्ष्या करते है। निर्धन व्यक्ति धनी व्यक्तियों से ईर्ष्या करते हैं। व्यभिचारिणी औरत पवित्र स्त्री से इर्ष्या करती है और विधवा स्त्रियां सुहाग वाली स्त्रियों से द्वेष रखती हैं। ।।६।।

आलस्योपगता विद्या परहस्तगतं धनम्।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम् ॥ ।।७।।

आलस्य से विद्या नष्ट हो जाती है। दूसरों को अपने धन का रक्षक बना देने से धन नष्ट होता है। बीज की की से खेत नष्ट हो जाता है और सेनापति के बिना सेना नष्ट हो जाती है। ।।७।।

अभ्यासाद्धार्यतेविद्या कुलं शीलेन धार्यते।
गुणेन ज्ञायतेत्वार्यः कोपो नेत्रेण गम्यते॥ ।।८।।



अभ्यास से विद्या, सुशीलता से कुल, गुण से सज्जन व्यक्ति और नेत्रों से क्रोध ज्ञात होता है। ।।८।।

वित्तेन रक्ष्यतेधर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृदुना रक्ष्यतेभूपः सत्स्त्रिया रक्ष्यतेगृहम्॥ ।।९।।

धन से धर्म की रक्षा होती होती है। योग, अभ्यास से ज्ञान की रक्षा होती है। मृदुता से राजा की रक्षा होती है और घर की रक्षा एक दक्ष गृहिणी से होती है। ।।९।।

अन्यथा वेदशास्त्राणि ज्ञानपाण्डित्यमन्यथा ।
अन्यथा तत्पदं शान्तं लोकाः क्लिश्यन्ति चाह्न्यथा ॥ ।।१०।।

जो वैदिक ज्ञान की निंदा करते है, शास्त्र सम्मत जीवनशैली के विषय में व्यर्थ विवाद करते है और शांतिपूर्ण स्वभाव के लोगो का मजाक उड़ाते है, वे बिना किसी कारण दुःख को प्राप्त होते है अर्थात वह उक्त व्यक्तिओं का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। ।।१०।।

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् ।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी ॥ ।।११।।

दान गरीबी का नाश करता है। अच्छा आचरण दुःख का नाश करता है। विवेक अज्ञान को नष्ट करता है और भक्ति भय को समाप्त करती है। ।।११।।

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्॥ ।।१२।।



काम से समान दूसरी व्याधि नहीं, अज्ञान से सामान वैरी नहीं, क्रोध के समान दूसरी आग नहीं एवं ज्ञान से बढ़कर सुख नहीं। ।।१२।।

जन्ममृत्यू हि यात्येको भुनक्त्येकः शुभाशुभम्।
नरकेषुपतत्येक एको याति परां गतिम्॥ ।।१३।।

व्यक्ति अकेले ही पैदा होता है। अकेले ही मरता है। अपने कर्मों के शुभ अशुभ परिणाम अकेले ही भोगता है। अकेले ही नरक में जाता है या सदगति प्राप्त करता है। ।।१३।।

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम्।
जिताशस्य तृणं नारी निःस्पृहस्य तृणं जगत्॥ ।।१४।।

ब्रह्मज्ञानी के लिए स्वर्ग तिनके के सामान है। पराक्रमी योद्धा के लिए अपना जीवन तिनके के सामान है। जितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए स्त्री तिनके के सामान है और कामना से रहित व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण जगत तिनके के सामान है। ।।१४।।

विद्या मित्रं प्रवासे च भार्यामित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥ ।।१५।।

विदेश में विद्या मित्र है। घर में पत्नी मित्र है। रोगी की मित्र दवा है और मृत व्यक्ति का मित्र धर्म है। ।।१५।।

वृथा वृष्टिः समुद्रेषुवृथा तृप्तस्य भोजनम्।
वृथा दानं समर्थस्य वृथा दीपो दिवापि च ॥ ।।१६।।



समुद्र में होने वाली वर्षा व्यर्थ है। भोजन से तृप्त होने के पश्च्यात अन्न व्यर्थ है। समर्थ को दान देना व्यर्थ है तथा दिन के समय जलता दीपक व्यर्थ है। ।।१६।।

नास्ति मेघसमं तोयं नास्ति चात्मसमं बलम्।
नास्ति चक्षुःसमं तेजो नास्ति धान्यसमं प्रियम्॥ ।।१७।।

वर्षा के समान कोई जल नहीं। अपनी शक्ति के समान कोई शक्ति नहीं। नेत्र ज्योति के समान कोई प्रकाश नहीं। अन्न से बढ़कर कोई संपत्ति नहीं। ।।१७।।

अधना धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदाः ।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः ॥ ।।१८।।

निर्धन धन की कामना करते है। पशु वाणी की कामना करते है । मनुष्य स्वर्ग की कामना करते हैं तथा देवता मुक्ति की कामना करते हैं रहती हैं। ।।१८।।

सत्येन धार्यतेपृथ्वी सत्येन तपतेरविः ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वंसत्येप्रतिष्ठितम्॥ ।।१९।।

सत्य ही इस दुनिया को धारण करता है। सत्य से ही सूर्य प्रकाशमान है, सत्य से ही हवाएं चलती हैं तथा सत्य पर ही सब कुछ आश्रित है। ।।१९।।

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलेजीवितमन्दिरे।
चलाचलेच संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥ ।।२०।।



लक्ष्मी जो संपत्ति की देवता है, वह चंचला है। हमारी श्वास भी चंचला है। समस्त संसार ही चंचला है अर्थात इस विश्व में कुछ भी स्थिर नहीं है। यदि कुछ यहाँ पर स्थिर है तो वह केवल धर्म है। ।।२०।।

नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः ।
चतुष्पादं श्रृगालस्तुस्त्रीणां धूर्ताच मालिनी ॥ ।।२१।।

आदमियों में नाई सबसे धूर्त है। पक्षियों में कौवा सबसे धूर्त है। प्राणीयों में लोमड़ी सबसे धूर्त है। स्त्रियों में धूर्त स्त्री सबसे धूर्त है। ।।२१।।

जनिता चोपनेता च यस्तुविद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैतेपितरः स्मृताः ॥ ।।२२।।

जन्म देनेवाला, यज्ञोपवीत आदि संसार करने वाला, विद्या देने वाला, अन्न देने वाला तथा भय से बचाने वाला; यह पांच पिता माने जाते हैं। ।।२२।।

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च ।
पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैता मातरः स्मृताः ॥ ।।२३।।

इन सब को आपनी माता समझें - राजा की पत्नी, गुरु की पत्नी, मित्र की पत्नी, पत्नी की माँ और आपकी अपनी माँ। ।।२३।।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे पंचमोऽध्यायः॥



चाणक्य नीति दर्पणः

षष्ठमोऽध्यायः

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम् ।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ।।१।।

मनुष्य शास्त्र को सुनकर धर्म को जानता है, शटर सुनकर दुर्बुद्धि को छोड़ता है, शास्त्र सुनकर ज्ञान पाता है तथा ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त करता है । ।।१।।

पक्षिणः काकश्चण्डालः पशूनां चैव कुक्कुरः ।
मुनीनां पापश्चण्डालः सर्वचाण्डालनिन्दकः ॥ ।।२।।

पक्षियों में कौवा नीच है। पशुओं में कुत्ता नीच है। जो तपस्वी पाप करता है वो घृणा के योग्य है परन्तु जो मनुष्य दूसरो की निंदा करता है वह साक्षात् चांडाल है। ।।२।।

भस्मना शुद्ध्यते कास्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ।
रजसा शुद्ध्यते नारी नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥ ।।३।।

कांसे का पात्र राख के घिसने से शुद्ध होता है, ताम्बे का पात्र इमली या खटाई से शुद्ध होता है, स्त्रियां रजस्वला होने से शुद्ध होती हैं तथा नदी धारा के वेग से शुद्ध होती हैं। ।।३।।

भ्रमन्सम्पूज्यते राजा भ्रमन्सम्पूज्यते द्विजः ।



भ्रमन्सम्पूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति ॥ ।।४।।

राजा, ब्राह्मण तथा तपस्वी योगी भ्रमण करने पर आदर पाते हैं। परन्तु स्त्री भ्रमण करने से भ्रष्ट हो जाती है। ।।४।।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥ ।।५।।

धनवान व्यक्ति के कई मित्र होते है. उसके कई सम्बन्धी भी होते है। धनवान को ही आदमी कहा जाता है और धनवान को ही पंडित कह कर सम्मानित किया जाता है। ।।५।।

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः ।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥ ।।६।।

सर्व शक्तिमान के इच्छा से ही सम्पूर्ण कर्म सिद्ध होते हैं, उसी की इच्छा से ही बुद्धि, कर्म ,उपाय और सहायक उपस्थित हो जाते हैं। ।।६।।

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ।।७।।

काल सभी जीवो को जीर्ण एवं नष्ट करता है तथा सबके सोने पर भी जागता रहता है। काल अजेय है, काल को कोई जीत नहीं सकता। ।।७।।

न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति ।
मदोन्मत्ता न पश्यन्ति अर्थी दोषं न पश्यति ॥ ।।८।।



जो जन्म से अंधे है वो देख नहीं सकते। उसी तरह जो कामना के अधीन है वो भी देख नहीं सकते। अहंकारी व्यक्ति को कभी ऐसा नहीं लगता की वह कुछ बुरा कर रहा है और अर्थ का लालची व्यक्ति को उनके किसी भी कर्म में कोई पाप दिखाई नहीं देता। ।।८।।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते॥ ।।९।।

जीवात्मा अपने आप की कर्म करता है, उसका फल भी स्वयं ही भोगता है, अपने आप ही इस संसार में भ्रमण करता है तथा अपने अआप ही उससे मुक्त भी होता है। ।।९।।

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः ।
भर्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा ॥ ।।१०।।

अपने राज्य में हुए पापों को राजा तथा राजा के पाप को पुरोहित भोगता है। जैसे स्त्रियों के पाप को पुरुष भोगता है वैसे ही शिष्यों के पाप को गुरु भोगता है। ।।१०।।

ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी ।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ॥ ।।११।।

कर्जा लेने वाला पिता, व्यभिचारिणी माता, सुंदर स्त्री और मूर्ख पुत्र शत्रु सामान हैं। ।।११।।

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् स्तब्धमञ्जलिकर्मणा ।
मूर्खं छन्दोऽनुवृत्त्या च यथार्थत्वेन पण्डितम् ॥ ।।१२।।



एक लालची आदमी को धन से, अहंकारी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को सम्मान देकर तथा विद्वान को सच बोलकर संतुष्ट करे। ।।१२।।

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम् ।
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो वरं न दार न कुदरदारः ॥ ।।१३।।

एक दुष्ट राज्य का राजा होने से यह बेहतर है की व्यक्ति किसी राज्य का राजा ना हो। एक दुष्ट का मित्र होने से बेहतर है की कोई मित्र न हो। एक मुर्ख का गुरु होने से बेहतर है की कोई शिष्य न हो। एक दुष्ट पत्नी होने से बेहतर है की पत्नी ही ना हो। ।।१३।।

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं कुमित्रमित्रेण कुतोऽभिनिर्वृतिः ।
कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः कुशिष्यशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ॥
।।१४।।

दुष्ट राजा के राज्य में प्रजा कैसे सुखी हो सकती है? दुष्ट मित्र से आनंद कैसे मिल सकता है ? दुष्ट स्त्री के साथ घर में प्रेमपूर्वक कैसे रहा जा सकता है तथा एक मूर्ख शिष्य को शिक्षा देकर कीर्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? ।।१४।।

सिंहादेकं बकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात् ।
वायसात्पञ्च शिक्षेच्च षट्शुनस्त्रीणि गर्दभात् ॥ ।।१५।।

सिंह से एक, बगुले से एक और मुर्गे से चार बातें सीखनी चाहियें। कौवे से पांच, कुत्ते से छः और गधे से तीन गुण सीखना उचित है। ।।१५।।

प्रभूतं कार्यमल्पं वा यन्नरः कर्तुमिच्छति ।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते ॥ ।।१६।।



सिंह से यह एक बात सीखें कि कार्य छोटा हो या बड़ा - जो भी करना हो उसको पूर्ण बुद्धि तथा बल लगा कर संपन्न करें। ।।१६।।

इन्द्रियाणि च संयम्य रागद्वेषविवर्जितः ।
समदुःखसुखः शान्तः तत्त्वज्ञः साधुरुच्यते ॥ ।।१७।।

बुद्धिमान व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को बगुले की तरह वश में करते हुए अपने लक्ष्य को जगह, समय और योग्यता के अनुसार पूर्ण करें। ।।१७।।

प्रत्युत्थानं च युद्धं च संविभागं च बन्धुषु ।
स्वयमाक्रम्य भुक्तं च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात् ॥ ।।१८।।

मुर्गे से यह चार बाते सीखें - सही समय पर उठें, निडर बने और रण में उद्यत रहें, अपनी संपत्ति का सम्बन्धियों में उचित बंटवारा करें तथा अपने भोजन / रोजगार के लिए कठिन मेहनत करें। ।।१८।।

गूढमैथुनचारित्वं काले काले च सङ्ग्रहम् ।
अप्रमत्तमविश्वासं पञ्च शिक्षेच्च वायसात् ॥ ।।१९।।

कौवे से यह पांच बातें सीखें - सदा सुरक्षित रहें, पत्नी के साथ एकांत में प्रणय करे, उपयोगी वस्तुओ का संचय करे, सदा सावधान रहें तथा दूसरों पर आसानी से विश्वास ना करें। ।।१९।।

बह्वाशी स्वल्पसन्तुष्टः सनिद्रो लघुचेतनः ।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुणाः ॥ ।।२०।।



कुत्ते से यह छह बातें सीखें - थोड़े में भी संतुष्ट रहें, गहरी नींद से भी एक क्षण में उठ जाएं, अपने स्वामी के प्रति बेहद ईमानदार बने रहें, सजग रहें, शूरता दिखाएँ तथा वीर बनें। ।।२०।।

सुश्रान्तोऽपि वहेद्भारं शीतोष्णं न च पश्यति ।
सन्तुष्टश्चरते नित्यं त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात् ॥ ।।२१।।

गधे से यह तीन बातें सीखें - अत्यंत थक जाने पर भी अपना बोझा ढोना, सर्दी गर्मी की चिंता ना करना , सदा संतुष्ट हो कर रहना । ।।२१।।

य एतान्विंशतिगुणानाचरिष्यति मानवः ।
कार्यावस्थासु सर्वासु अजेयः स भविष्यति ॥ ।।२२।।

जो व्यक्ति इन बीस गुणों पर अमल करेगा वह सदा सब अवस्थाओं में तथा सब कार्यों में विजयी रहेगा। ।।२२।।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे षष्ठमोऽध्यायः॥



चाणक्य नीति दर्पण:

सप्तमोऽध्याय:

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ ।।१।।

एक बुद्धिमान व्यक्ति को यह बातें किसी को नहीं बतानी चाहियें - उसके धन का नाश हो गया है, उसे क्रोध आ गया है, उसकी पत्नी ने गलत व्यवहार किया है लोगो ने उसे अपशब्द कहे तथा उसका अपमान हुआ है। ।।१।।

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासङ्ग्रहणे तथा ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥ ।।२।।

जो व्यक्ति आर्थिक व्यवहार करने में, ज्ञान अर्जन करने में, खाने में और काम-धंदा करने में शर्माता नहीं है वो सुखी हो जाता है। ।।२।।

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च ।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥ ।।३।।

संतोष रुपी अमृत से जो लोग तृप्त है उन्हें सुख और शांति का अनुभव होता है। परन्तु धन के लोभी जो लोभ के वश में होकर जहाँ तहाँ भटकते रहते है उन्हें सुख और शांति का अनुभव नहीं होता। ।।३।।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥ ।।४ ।।



व्यक्ति इन सब चीजों से सदा संतुष्ट रहना चाहिए - अपनी पत्नी, भगवान् का दिया भोजन और धन। परन्तु व्यक्ति को इन वस्तुओं से कभी संतुष्ट नहीं होना चाहिए - विद्या अभ्यास, भगवान् नाम का जप तथा दान। ।।४ ।।

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः ।
अन्तरेण न गन्तव्यं हलस्य वृषभस्य च ॥ ।।५।।

दो ब्राह्मण, ब्राह्मण और उसके यज्ञ में जलने वाली अग्नि, पति -पत्नी, स्वामी और उसका चाकर, हल और बैल, इन सबके मध्य से होकर नहीं जाना चाहिए। ।।५।।

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च ।
नैव गां न कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा ॥ ।।६।।

अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गाय, कुमारी कन्या, वृद्ध तथा बच्चे को कभी पैर से नहीं छूना चाहिए। ।।६।।

शकटं पञ्चहस्तेन दशहस्तेन वाजिनम् ।
गजं हस्तसहस्रेण देशत्यागेन दुर्जनम् ॥ ।।७।।

गाडी को पांच हाथ पर , घोड़े को दस हाथ पर, हाथी को हजार हाथ पर और दुर्जन व्यक्ति को देश छोड़ कर निकलना चाहिए। ।।७।।

हस्ती अङ्कुशमात्रेण वाजी हस्तेन ताड्यते ।
शृङ्गी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः ॥ ।।८।।



हाथी को अंकुश से नियंत्रित करे, घोड़े को थप थपा के, सींग वाले जानवर को डंडा दिखा के और दुर्जन व्यक्ति को तलवार से। ।।८।।

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनगर्जिते ।
साधवः परसम्पत्तौ खलाः परविपत्तिषु ॥ ।।९।।

ब्राह्मण अच्छे भोजन से, मोर मेघ गर्जना से, साधु दुसरों की सम्पन्नता देखकर और दुष्ट दूसरों की विपदा देखकर संतुष्ट होते हैं । ।।९।।

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्जनम् ।
आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेन वा ॥ ।।१०।।

एक शक्तिशाली शत्रु से उसके अनुकूल व्यव्हार करके, दुष्ट का प्रतिकार करें और जिनकी शक्ति आपकी शक्ति के बराबर है उनसे समझौता विनम्रता से या कठोरता से करें। ।।१०।।

बाहुवीर्यं बलं राज्ञां ब्रह्मणो ब्रह्मविद्बली ।
रूपयौवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम् ॥ ।।११।।

एक राजा की शक्ति उसकी शक्तिशाली भुजाओ में है, एक ब्राह्मण की शक्ति उसके स्वरुप ज्ञान में है, एक स्त्री की शक्ति उसकी सुन्दरता, तारुण्य और मीठे वचनों में है। ।।११।।

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥ ।।१२।।



अत्यंत सीधे स्वाभाव से नहीं रहना चाहिए। आप यदि वन जाकर देखें तो पायेंगे की जो पेड़ सीधे उगे उन्हें काट लिया गया और जो पेड़ आड़े तिरछे उगे वो खड़े हैं। ।।१२।।

यत्रोदकं तत्र वसन्ति हंसा - स्तथैव शुष्कं परिवर्जयन्ति ।
न हंसतुल्येन नरेण भाव्यं पुनस्त्यजन्तः पुनराश्रयन्ते ॥ ।।१३।।

हंस वहाँ रहते है जहाँ पानी होता है, पानी सूखने पर हंस उस जगह को छोड़ देते है। नर को हंस के सामान बार बार आश्रय लेने वाला और बार बार छोड़ देने वाला नहीं रहना चाहिए। ।।१३।।

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् ।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम् ॥ ।।१४।।

संचित धन का व्यय करना ही उसकी रक्षा है। जैसे तालाब के स्थिर जल को निकाल देने से ही उसकी रक्षा होती है। ।।१४।।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥ ।।१५।।

वह व्यक्ति जिसके पास धन है उसके पास मित्र और सम्बन्धी भी बहुत होते हैं। वही पुरुष माना जाता है और उसी को इज्जत मिलती है। ।।१५।।

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे ।
दानप्रसंगो मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ॥ ।।१६।।



स्वर्ग से पृथ्वी पर आने वाले मनुष्यों में यह चार चिन्ह रहते हैं - दान का स्वाभाव, मीठे वचन, देवता की पूजा और ब्राह्मण को तृप्त करना। ।।१६।।

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम् ।
नीचप्रसंगः कुलहीनसेवा चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥ ।।१७।।

नरक से पृथ्वी पर आने मनुष्यों में यह चार चिन्ह रहते हैं - अत्याधिक क्रोध, कठोर वचन, अपने ही संबंधियों से शत्रुता, नीच लोगो से मैत्री, कुलहीन की सेवा। ।।१७।।

गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिरं लभ्यते करिकपालमौक्तिकम् ।
जम्बुकालयगते च प्राप्यते वत्सपुच्छखरचर्मखण्डनम् ॥ ।।१८।।

यदि आप शेर की गुफा में जाते हैं तो आप को हाथी के माथे की मणि मिल सकती है, लेकिन यदि आप लोमड़ी जहाँ रहती है वहाँ जाते हैं तो बछड़े की पूछ या गधे की हड्डी के अलावा कुछ नहीं मिलेगा। ।।१८।।

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना।
न गुह्यगोपने शक्तं न च दंशनिवारणे ॥ ।।१९।।

विद्या बिना जीवन कुत्ते की पूँछ की व्यर्थ है। कुत्ते की पूँछ न तो उसकी इज्जत ही ढकती है और ना ही मक्खी आदि अन्य जीवों को उड़ा सकती है। उसी प्रकार मूर्ख पुरुष न तो गुप्त बात को छिपा सकता है और न ही शत्रुओं के आक्रमण को व्यर्थ कर सकता है। ।।१९।।

वाचां शौचं च मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदयाशौचमेतच्छौचं परार्थिनाम् ॥ ।।२०।।



वचन की शुध्दि, मन की शुद्धि, इन्द्रियों पर संयम, जीवों पर दया और पवित्रता यही मुक्ति चाहने वालों की शुद्धि है।   ।।२०।।

पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम् ।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकतः ॥ ।।२१।।

जिस प्रकार फूलों में खुशबु है, तिल में तेल है, लकड़ी में अग्नि है, दूध में घी है, गन्ने में गुड है, उसी प्रकार हर व्यक्ति में आत्मा रूप से परमात्मा स्थित है। ।।२१।।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे सप्तमोऽध्यायः॥



चाणक्य नीति दर्पणः

अष्टमोऽध्यायः

अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ च मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥ ।।१।।

अधम धन चाहते है, मध्यम धन और मान, परन्तु उत्तम जन केवल सम्मान चाहते है क्योंकि सम्मान ही उत्तम जनों की असली धन है। ।।१।।

इक्षुरापः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वापि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ ।।२।।

गन्ना, जल, दुग्ध, मूल, पान, फल तथा औषधि, इन वस्तुओं को खाने के पश्च्यात भी स्नान, दानादि (नित्य कर्म) किये जा सकते हैं। ।।२।।

दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते ।
यदन्नं भक्षयते नित्यं जायते तादृशी प्रजा ॥ ।।३।।

दीपक अँधेरे का भक्षण करता है और काजल उत्पन्न करता है। सत्य है, जो जैसा अन्न सदा खाते है उन्हें वैसे ही के विचार उत्पन्न होते हैं। ।।३।।

वित्तं देहि गुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्र देहि क्वचित्
प्राप्तं वारिनिधेर्जलं घनमुखे माधुर्ययुक्तं सदा ।
जीवान्स्थावरजंगमांश्च सकलान्संजीव्य भूमण्डलं



भूयः पश्य तदेव कोटिगुणितं गच्छन्तमम्भोनिधिम् ॥ ।।४।।

हे विद्वान् पुरुष ! अपनी संपत्ति केवल पात्र को ही दे और दूसरों को कभी ना दे। जो जल बादल को समुद्र देता है वह बड़ा मीठा होता है, बादल वर्षा करके वह जल पृथ्वी के सभी चल अचल जीवो को देता है और फिर उसे समुद्र को लौटा देता है, जिससे समुद्र के पानी की महत्वता लाख गुना बढ़ जाती है। ।।४।।

चाण्डालानां सहस्रैश्च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
एको हि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः ॥ ।।५।।

तत्वदर्शियों ने कहा है की सहस्त्र चांडालो से तुल्य एक यवन होता है। यवनों से नीच कोई दूसरा नहीं हैं। ।।५।।

तैलाभ्यङ्गे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि ।
तावद्भवति चाण्डालो यावत्स्नानं न चाचरेत् ॥ ।।६।।

शरीर पर मालिश करने के बाद, शमशान में चिता का धुआँ लगने पर, सम्भोग करने के बाद, बाल कटवाने के बाद जब तक आदमी स्नान नहीं करता, वह तब तक चांडाल रहता है। ।।६।।

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम् ।
भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषापहम् ॥ ।।७।।

जल अपच की दवा है, पांच जाने पर बल को देता है, भोजन के समय अमृत के समान है और भोजन के अंत में विष का फल देता है। ।।७।।



हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो नरः ।
हतं निर्णायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः ॥ ।।८।।

आचरण के बिना ज्ञान व्यर्थ है, अज्ञान से नर मारा जाता है, सेनापति के बिना सेना मारी जाती है और स्वामिहीन स्त्री नष्ट हो जाती है। ।।८।।

वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्तगतं धनम् ।
भोजनं च नाग्निहोत्रं विना वेदा न च दानं विना क्रिया ।
न भावेन विना सिद्धिस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥ ।।९।।

बुढ़ापे में मरी स्त्री, बंधू के हाथ में गया धन, दूसरे के अधीन भोजन यह सब पुरुषों के लिए दुखदायी होता है। ।।९।।

अग्निहोत्रं बिना वेदा न च दानं बिना क्रिया।
न भावेन बिना सिद्धिस्त समाद्भावो हि कारणम॥ ।।१०।।

अग्निहोत्र के बिना वेद का पढ़ना व्यर्थ होता है, दान के बिना यज्ञादि क्रिया नहीं बनता। भाव के बिना कोई सिद्धि नहीं होती। अतः भाव ही सबका कारण है। ।।१०।।

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये ।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥ ।।११।।

देवता न तो लकड़ी में हैं, न पत्थर में, न मृतिका की मूर्ति में ही हैं। निश्चय ही देवता भाव (हृदय) में विद्यमान हैं अतः भाव ही सर्वोपरि कारण है। ।।११।।

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम् ।



अपत्यं च कलत्रं च सतां सङ्गतिरेव च ॥ ।।१२।।

शांति के समान कोई तप नही है, संतोष से श्रेष्ठ कोई सुख नही, तृष्णा से बढकर कोई रोग नही और दया से बढकर कोई धर्म नही । ।।१२।।

क्रोधो वैवस्तो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुधा धेनु: संतोषो नन्दनं वनम।। ।।१३।।

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु है और संतोष इंद्र की वाटिका है। ।।१३।।

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम् ।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥ ।।१४।।

गुण रूप कि शोभा बढ़ाते हैं, शील - स्वभाव कुल की शोभा बढ़ाता है, सिद्धि विद्या की शोभा बढ़ाती है और भोग धन की शोभा बढ़ाता है ।

निर्गुणस्य हतं रूपं दुःशीलस्य हतं कुलम् ।
असिद्धस्य हता विद्या ह्यभोगेन हतं धनम् ॥ ।।१५।।

गुण हीन का रूप व्यर्थ है, दुराचारी का कुल निन्दित होता है, सिद्धि के बिना व्यर्थ है, भोग के बिना धन व्यर्थ है। ।।१५।।

शुद्धं भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता ।
शुचिः क्षेमकरो राजा सन्तोषो ब्राह्मणः शुचिः ॥ ।।१६।।

भूमिगत जल शुद्ध है, पतिव्रता स्त्री शुद्ध है, कल्याण करने वाला राजा शुद्ध है और संतोषी ब्राह्मण शुद्ध है। ।।१६।।



असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः सन्तुष्टाश्च महीभृतः ।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जाश्च कुलाङ्गना ॥ ।।१७।।

असंतुष्ट ब्राह्मण, संतप्त राजा, लज्जासहित वेश्या और लज्जाहीन कुल की स्त्री नष्ट हो जाती है। ।।१७।।

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम् ।
दुष्कुलं चापि विदुषो देवैरपि स पूज्यते ॥ ।।१८।।

विद्याहीन होने पर विशाल कुल का क्या लाभ है? विद्वान नीच कुल का भी हो, तब भी देवताओं द्वारा पूजा जाता है । ।।१८।।

विद्वान्प्रशस्यते लोके विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।
विद्यया लभते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते ॥ ।।१९।।

संसार में विद्वान् ही प्रशंसित होता है। विद्वान् ही उसकी विद्वत्ता के लिए हर जगह सम्मान पाता है। विद्या से ही सबकुछ मिलता है, विद्या ही सब स्थानों में पूजित होती है। ।।१९।।

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसंभवाः।
विद्याहीन न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।। ।।२०।।

रूप यौवन से संपन्न, विशाल कुल में उत्पन्न मनुष्य भी वैसे ही शोभा नहीं पाते, जैसे बिना गंध के टेसू के फूल सुन्दर होने पर भी पूजा के कार्य में नहीं लाये जाते। ।।२०।।

मांसभक्ष्यैः सुरापानैर्मुखैश्चाक्षरवर्जितैः ।
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रान्ता हि मेदिनी ॥ ।।२१।।



मांसभक्षण और मदिरापान करने वाले, निरक्षर और मूर्ख पुरुष रुपी पशुओं के भार से यह धरती पीड़ित रहती है। ।।२१।।

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः ।
यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥ ।।२२।।

यज्ञ यदि अन्नहीन हो तो राज्य को, मंत्रहीन हो तो ऋत्विकों को और दानहीन हो तो यजमान को जलाता है। ऐसे यज्ञ के समान कोई शत्रु नहीं है।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे अष्ठमोऽध्यायः॥

जीवन्तु में शत्रुगणाः सदैव येषां प्रसादात् सुविचक्षणोऽहम् ।

यदा यदा में विकृतं भजन्ते तदा तदा मां प्रतिबाधयन्ति ॥

आचार्य चाणक्य कहते हैं - मेरी इस नीति की त्रुटि दिखाने वाला मेरा वह समालोचक शत्रु पक्ष सदा बना रहे जिसकी कटु आलोचना से सदा सतर्क रहने के लिये विवश हो जानेवाला मैं निर्दोष बन गया हूँ। यह पक्ष जब मेरी त्रुटि देखता है तभी मुझे अपनी भूल सुधारने के लिये सावधान कर देता है।



चाणक्य नीति दर्पण:

नवमोऽध्याय:

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्त्यज ।
क्षमार्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत्पिब ॥ ॥१॥

तात, यदि तुम जन्म मरण के चक्र से मुक्त होना चाहते हो तो जिन विषयो के पीछे तुम इन्द्रियों की संतुष्टि के लिए भागते फिरते हो उन्हें ऐसे त्याग दो जैसे तुम विष को त्याग देते हो। इन सब को छोड़कर सहनशीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सच्चाई का अमृत पियो। ॥१॥

परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमाः ।
त एव विलयं यान्ति वल्मीकोदरसर्पवत् ॥ ॥२॥

वो दुष्ट जो अपने दुखदायक वचनों से दूसरों की अंतरात्मा पर चोट पहुंचते घुमते हैं, वैसे ही नष्ट हो जाते है जिस तरह कोई सांप चीटियों के टीलों में फंस कर मर जाता है। ॥२॥

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे नाकरि पुष्पं खलु चन्दनस्य ।
विद्वान्धनाढ्यश्च नृपश्चिरायुः धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥ ॥३॥

विधाता ने सुवर्ण को सुगंध, गन्ने को फल, चन्दन के वृक्ष को फूल, विद्वान् को धन तथा राजा को चिरंजीवी रहने का प्रबंध नहीं किया। इससे निश्चय है की विधाता को पहले से कोई सलाह या बुद्धि देने वाला नहीं था। ॥३॥



सर्वौषधीनाममृता प्रधाना सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम् ।
सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥ ॥४॥

अभी औषधियों में अमृत, सब सुखों में भोजन, सब इन्द्रियों में नेत्र और सब अंगों में सिर या मस्तक श्रेष्ठ है। ॥४॥

दूतो न सञ्चरति खे न चलेच्च वार्ता पूर्वं न जल्पितमिदं न च सङ्गमोऽस्ति ।
व्योम्नि स्थितं रविशाशिग्रहणं प्रशस्तं जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान् ॥ ॥५॥

न कोई संदेशवाहक आकाश में जा नहीं सकता और न ही आकाश से कोई समाचार आ सकता है। न वहां रहने वालों से वार्ता, चर्चा अथवा सम्पर्क ही हो सकता है । अत: जो ब्राह्मण जो सूर्य और चन्द्र ग्रहण की भविष्य वाणी करता है, उसे विद्वान मानना चाहिए। ॥५॥

विद्यार्थी सेवकः पान्थः क्षुधार्तो भयकातरः ।
भाण्डारी प्रतिहारी च सप्त सुप्तान्प्रबोधयेत् ॥ ॥६॥

विद्यार्थी, सेवक, पथिक, भूख से पीड़ित, डरा हुआ आदमी, खजाने का रक्षक और द्वारपाल , ये साथ यदि सोते भी हों तो इनको जगा देना चाहिए। ॥६॥

अहिं नृपं च शार्दूलं वृद्धं च बालकं तथा ।
परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुप्तान्न बोधयेत् ॥ ॥७॥



साँप, राजा, बाघ, बर्रा, बालक, दूसरों का कुत्ता और मूर्ख, ये सात यदि सोते हों, तो इन्हे नहीं जगाना चाहिए। ॥७॥

अर्धाधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्नभोजनाः ।
ते द्विजाः किं करिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगाः॥ ॥८॥

जिन ब्राह्मणों ने वेदों का अध्ययन धन लाभ के लिए किया और जो शूद्रों का दिया हुआ अन्न खाते है उनके पास कौन सी शक्ति हो सकती है। वो ऐसे विषहीन सर्प के समान हैं जो दंश नहीं मार सकते है। ॥८॥

यस्मिन्रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः ।
निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥ ॥९॥

जिसके क्रुद्ध होने पर न भय होता है, न प्रसन्न होने पर धन का लाभ, जो न दंड दे सकता है, न अनुग्रह कर सकता है, वह रुष्ट होकर क्या करेगा। ॥९॥

निर्विषेणापि सर्पेण कर्तव्या महती फणा ।
विषमस्तु न चाप्यस्तु घटाटोपो भयङ्करः ॥ ॥१०॥

विषहीन सांप को भी अपना फ़न निकालना चाहिए। इस कारण कि विष हो या न हो, पर आडम्बर अत्यंत भयानक होता है।॥१०॥

प्रातर्द्यूतप्रसङ्गेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसङ्गतः ।
रात्रौ चौरप्रसङ्गेन कालो गच्छन्ति धीमताम् ॥ ॥११॥



प्रातःकाल में जुआरियों की कथा से अर्थात महाभारत से, मध्याह्न में स्त्रीप्रसंग से अर्थात रामायण से, रात्रि में चोर की वार्ता से अर्थात भगवान् की वार्ता से बुद्धिमानो का समय बीतता है। ॥११॥

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टचन्दनम् ।
स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रस्यापि श्रियं हरेत॥ ॥१२॥

अपने हाथ से गुथी, माला, अपने हाथ से घिसा चन्दन, अपने हाथ से लिखा स्तोत्र, यह इंद्र की भी लक्ष्मी को हर लेते हैं। ॥१२॥

इक्षुदण्डास्तिलाः शूद्राः कान्ता हेम च मेदिनी ।
चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुणवर्धनम् ॥१३॥

गन्ना, तिल, शूद्र, कांता, सोना, पृथ्वी, चन्दन, दही, पान ये ऐसे पदार्थ हैं कि इनका मर्दन गुणवर्धक होता है। ॥१३॥

दरिद्रता धीरतया विराजते
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ।
कदन्नता चोष्णतया विराजते
कुरूपता शीलतया विराजते ॥१४॥

गरीबी पर धैर्य से मात करे। पुराने वस्त्रो को स्वच्छ रखें। बासी अन्न को गरम करे। अपनी कुरूपता पर अपने अच्छे व्यवहार से मात करें। ॥१४॥

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे नवमोऽध्यायः॥



चाणक्य नीति दर्पणः

दशमोऽध्यायः

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः ।
विद्यारत्नेन हीनो यः स हीनः सर्ववस्तुषु ॥१॥

निर्धन होने से कोई धनहीन नहीं गिना जाता; परन्तु जो धनवान होते हुए भी विद्यारतन से हीन है, वह प्रकार से निर्धन है।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यः मनःपूतं समाचरेत॥२॥

हम अपना हर कदम फूँक फूँक कर रखें। हम छाना हुआ जल पियें। हम वही बात बोले जो शास्त्र सम्मत है। हम वही काम करे जिसके विषय में हम सावधानी पूर्वक सोच चुके है।

सुखार्थी चेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत्त्यजेत्सुखम् ।
सुखार्थिनः कुतो विद्या सुखं विद्यार्थिनः कुतः ॥३॥

जिसे सुख चाहिए, वह विद्या अर्जन करने के सभी विचार भूल जाए और जिसे विद्या चाहिए वह सुख का त्याग करे; क्योंकि सुखार्थी को विद्या कैसे मिलेगी और विद्यार्थी को सुख कैसे मिलेगा।

कवयः किं न पश्यन्ति किं न भक्षन्ति वायसाः ।
मद्यपाः किं न जल्पन्ति किं न कुर्वन्ति योषितः ॥४॥



वह क्या है जिसकी कल्पना कवि नहीं कर सकता। वह कौन सा कार्य है जिसे करने में औरतें सक्षम नहीं है। ऐसी कौन सी व्यर्थ बात है जो मदिरापान किया हुआ व्यक्ति नहीं करता। ऐसा क्या है जो कौवा नहीं खाता।

रङ्कं करोति राजानं राजानं रङ्कमेव च ।
धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं विधिः ॥५॥

नियति एक भिखारी को राजा और राजा को भिखारी बनाती है। वह एक अमीर को गरीब और गरीब को अमीर बना सकती है।

लुब्धानां याचकः शत्रुर्मूर्खानां बोधको रिपुः ।
जारस्त्रीणां पतिः शत्रुश्चौराणां चन्द्रमा रिपुः ॥६॥

लोभी का शत्रु याचक होता है, मूर्खों का शत्रु उनको समझने वाला होता है, परपुरुष में आसक्ति रखने वाली स्त्री का शत्रु उसका पति होता है और चोरों का शत्रु चन्द्रमा होता है।

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥७॥

जिनके पास न विद्या है , न तप, न दान, न ज्ञान, न शील, न गुण और न ही धर्म भाव है। वह केवल धरती का भार बढ़ने वाले, मनुष्य के रूप में विचरते पशु हैं।

अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न जायते ।
मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्दनायते ॥८॥



मूर्ख व्यक्ति कोई उपदेश नहीं समझते। यदि बांस को मलय पर्वत पर भी उगाया जाये तब भी उसमे चन्दन के गुण नहीं आते।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥९॥

जिसे अपनी कोई बुद्धि नहीं है उसकी शास्त्र क्या भलाई करेंगे। एक आँखों से विहीन आदमी आइना लेकर क्या करेगा।

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो नहि भूतले ।
अपानं शतधा धौतं न श्रेष्ठमिन्द्रियं भवेत॥१०.१०॥

एक दुष्ट व्यक्ति कभी सुधर नहीं सकता। आप मल त्याग करने वाले पृष्ठ भाग को चाहे जितना साफ़ करें तब भी वह शरीर के अन्य श्रेष्ठ भागों की बराबरी नहीं कर सकता।

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः ।
राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥११॥

बड़ों के द्वेष से जान जाती है। शत्रु से विरोध करने पर धन जाता है, राजा के द्वेष से अन्न का नाश होता है तथा ब्राह्मण के द्वेष से कुल का नाश जाता है।

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालयं पत्रफलाम्बुसेवनम् ।
तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥१२॥



यह बेहतर है की आप जंगल में एक पेड़ के नीचे रहे, जहाँ बाघ और हाथी रहते है, उस जगह रहकर आप फल खाएं और जलपान करे, आप घास पर सोये और पुराने पेड़ो की खाले पहने। परन्तु कभी अपने सगे संबंधियों में ना रहें यदि आप निर्धन हो गए है।

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् ।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥१३॥

ब्राह्मण एक वृक्ष के समान है, उसकी प्रार्थना ही उसका मूल है, वेदों का गान ही उसकी शाखाएं हैं, धर्म और कर्म पत्ते हैं। इस कारण अंत्यंत सावधानी से जड़ की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि जड़ के नष्ट हो जाने पर न शाखायें रहेंगी और न ही पत्ते।

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः ।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥१४॥

लक्ष्मी जिनकी माता हैं, विष्णु भगवान पिता हैं, और विष्णु भक्त सगे सम्बन्धी हैं, उसको तीनो लोक भी स्वदेश के समान हैं।

एकवृक्षसमारूढा नानावर्णा विहंगमाः ।
प्रातर्दश दिशो यान्ति का तत्र परिदेवना ॥१५॥

रात्रि के समय कितने ही प्रकार के पंछी वृक्ष पर विश्राम करते है और सुबह होने पर सभी पंछी दसों दिशाओ में उड़ जाते है। अर्थात हमें अपनों से बिछुड़ने का धोक नहीं करना चाहिए ।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम् ।
वने सिंहो यदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ॥१६॥



जिसके पास विद्या है वह बलशाली है। निर्बुद्ध पुरुष के पास क्या शक्ति हो सकती है? वन में एक छोटा खरगोश भी बुद्धिमानी से मदमस्त सिंह को मार डालता है।

का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वंभरो गीयते
नो चेदर्भकजीवनाय जननीस्तन्यं कथं निर्ममे ।
इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलं
त्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते ॥१७॥

हे विश्वम्भर तू सबका पालन करता है। मैं अपने गुजारे की चिंता क्यों करूँ जब मेरा मन तेरी महिमा गाने में लगा हुआ है। आपके अनुग्रह के बिना एक माता की छाती से दूध नहीं बह सकता और शिशु का पालन नहीं हो सकता। मैं हरदम यही सोचता हुआ, हे यदु वंशियो के प्रभु, हे लक्ष्मी पति, मेरा पूरा समय आपके चरणकमलों की सेवा में लगा रहे।

गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धिस् तथापि भाषान्तरलोलुपोऽहम् ।
यथा सुधायाममरेषु सत्यां स्वर्गाङ्गनानामधरासवे रुचिः ॥१८॥

संस्कृत भाषा का विशेष ज्ञान होने पर भी मैं अन्य भाषाओँ को सीखना चाहता हूँ जैसे स्वर्ग में देवताओं के पीने के लिए अमृत होता है, फिर भी वे अप्सराओं के अधरों का रस पीना चाहते हैं।

अन्नाद्दशगुणं पिष्टं पिष्टाद्दशगुणं पयः ।
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम् ॥१९॥



खड़े अन्न से दस गुना अधिक बल पिसे हुए आटे में होते हैं। पिसे हुए आटे से भी दस गुना अधिक बल दूध में रहता है। दूध से भी आठ गुना अधिक बल मांस में रहता है और मांस से दस गुना अधिक बल घी में रहता है।

शोकेन रोगा वर्धन्ते पयसा वर्धते तनुः ।
घृतेन वर्धते वीर्यं मांसान्मांसं प्रवर्धते ॥१०.२०॥

शोक से रोग बढ़ते हैं। दूध से शरीर बढ़ता है। घी से वीर्य बढ़ता है। मांस से मांस बढ़ता है।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे दशमोऽध्यायः॥

कड़वी औषध बिन पिये मिटे न तन का ताप ।

हित की कडवी बिन सुने मिटे न मन का ताप ।

आचार्य चाणक्य ऐसे ही विशारद है जो रोगियो को अनिच्छापूर्वक कटु औषध पिलाने वाले वैद्यों या अभिभावक के समान ज्ञानपूर्वक या अज्ञान पूर्वक समाज का अहित करने वालों को कटु सत्य सना कर उनकी विपरीत प्रवृत्तियों को रोकते हैं तथा उन्हें कर्तव्य का सच्चा मार्ग सुझाते हैं।



चाणक्य नीति दर्पण:

एकादशोऽध्याय:

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुणाः॥ ।।१।।

उदारता, वचनों में मधुरता, साहस, आचरण में विवेक यह अभ्यास से नहीं मिलते, क्योंकि यह चारों स्वाभाविक गुण हैं। ।।१।।

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयेत।
स्वयमेव लयं याति यथा राजान्यधर्मतः ॥ ।।२।।

जो अपने समाज को छोड़कर दूसरे समाज में मिल जाता है, वह उसी राजा की तरह नष्ट हो जाता है जो अधर्म के मार्ग पर चलता है। ।।२।।

हस्ती स्थूलतनुः स चाङ्कुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो दीपे
प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः ।
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रं नगास् तेजो यस्य विराजते
स बलवान्स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥ ।।३।।

हाथी का शरीर कितना विशाल है लेकिन एक छोटे से अंकुश से नियंत्रित हो जाता है? क्या अंकुश हाथी के समान है । एक दिया घने अन्धकार का नाश करता है, क्या एक दिया अंधकार से बड़ा है? एक कड़कती हुई बिजली एक पहाड़ को तोड़ देती है, क्या बिजली पहाड़



जितनी विशाल है? अतः आकार से कोई अंतर नहीं पड़ता, जिसमे तेज विराजमान रहता है, वही शक्तिशाली माना जाता है। ।।३।।

कलौ दशसहस्राणि हरिस्त्यजति मेदिनीम् ।
तदर्धं जाह्नवीतोयं तदर्धं ग्रामदेवताः ॥ ।।४।।

कलियुग में दस सहस्त्र वर्ष बीतने पर विष्णु पृथ्वी की, उसे आधे पर गंगाजी जल को और उसका आधा बीतने पर ग्राम देवता ग्राम को छोड़ देंगे। ।।४।।

गृहासक्तस्य नो विद्या नो दया मांसभोजिनः ।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रता ॥ ।।५।।

जो घर गृहस्थी के काम में लगा रहता है वह कभी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। मांस खाने वाले के ह्रदय में दया नहीं हो सकती। लोभी व्यक्ति कभी सत्य भाषण नहीं कर सकता और एक व्यभिचारी में कभी शुद्धता नहीं आ सकती। ।।५।।

न दुर्जनः साधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः ।
आमूलसिक्तः पयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मदुरत्वमेति ॥ ।।६।।

एक दुष्ट व्यक्ति में कभी पवित्रता उदीप्त नहीं हो सकती उसे चाहे जितना भी समझाया जाये। नीम का वृक्ष कभी मीठा नहीं हो सकता चाहे आप उसको शिखा से मूल तक घी और शक्कर से सींच दें। ।।६।।

अन्तर्गतमलो दुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि ।
न शुध्यति यथा भाण्डं सुराया दाहितं च सत॥ ।।७।।



दुष्ट के ह्रदय का पाप सौ बार पवित्र जल में स्नान करने पर भी शुद्ध नहीं हो सकता, उसी प्रकार जैसे मदिरा का पात्र यदि जलाया भी जाये तब भी शुद्ध नहीं हो सकता। ।।७।।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं तं सदा निन्दति नात्र चित्रम् ।
यथा किराती करिकुम्भलब्धां मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम् ॥ ।।८।।

जो जिसके गुण का महत्त्व नहीं जानता, वह नरंतर उसकी निंदा ही करता है, उसी प्रकार जैसे एक जंगली शिकारी की पत्नी हाथी के सर का मणि फेककर गूंजे की माला धारण करती है। ।।८।।

ये तु संवत्सरं पूर्णं नित्यं मौनेन भुञ्जते ।
युगकोटिसहस्रं तैः स्वर्गलोके महीयते ॥ ।।९।।

जो व्यक्ति एक साल तक भोजन करते समय भगवान् का ध्यान करता है और मुंह से कुछ नहीं बोलता वह एक हजार करोड़ वर्ष तक स्वर्गलोक में पूजा जाता है। ।।९।।

कामक्रोधौ तथा लोभं स्वादुशृङ्गारकौतुके ।
अतिनिद्रातिसेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत॥ ।।१०।।

काम, क्रोध, लोभ, स्वादिष्ट भोजन, शरीर का शृंगार, अत्याधिक खेल, अधिक निद्रा, अति सेवा, इन आठों को विद्यार्थी छोड़ दे। ।।१०।।

अकृष्टफलमूलानि वनवासरतिः सदा ।
कुरुतेऽहरहः श्राद्धं ऋषिर्विप्रः स उच्यते ॥ ।।११।।



जो ब्राह्मण बिना जोति हुई भूमि से उत्पन्न फल और मूल खाकर सदा वन में रहता है और प्रतिदिन श्राद्ध करता है , उस विप्र को ऋषि कहना चाहिए। ।।११।।

एकाहारेण संतुष्टः षट्कर्मनिरतः सदा ।
ऋतुकालाभिगामी च स विप्रो द्विज उच्यते ॥ ।।१२।।

वही सही में ब्राह्मण है जो केवल एक बार के भोजन से संतुष्ट रहे, जिसके पर १६ संस्कार किये गए हो, जो अपनी पत्नी के साथ महीने में केवल उचित दिन ही समागम करे। ।।१३।।

लौकिके कर्मणि रतः पशूनां परिपालकः ।
वाणिज्यकृषिकर्मा यः स विप्रो वैश्य उच्यते ॥ ।।१३।।

वह ब्राह्मण जो दुकानदारी में लगा है, सांसारिक विषयों में फंसा है, व्यापार, कृषि या गौपालन करता है, असल में वैश्य ही है। ।।१३।।

लाक्षादितैलनीलीनां कौसुम्भमधुसर्पिषाम् ।
विक्रेता मद्यमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ ।।१४।।

जो लाख, तेल, नील, रेशम, शहद, चमड़ा, मदिरा अथवा मांस का व्यापार करता है, वह ब्राह्मण शूद्र के सामान है। ।।१४।।

परकार्यविहन्ता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः ।
छली द्वेषी मृदुः क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते ॥ ।।१५।।

दूसरों का बिगाड़ने वाला , दम्भी, स्वार्थी, धोखेबाज, द्वेष रखने वाला, बोलते समय मुंह में मिठास और ह्रदय में रखने वाला ब्राह्मण वह एक बिल्ली के समान है। ।।१५।।



वापीकूपतडागानामारामसुरवेश्मनाम् ।
उच्छेदने निराशङ्कः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ ।।१६।।

एक ब्राह्मण जो बावली, कुआँ, तालाब, बगीचे को और मंदिर को नष्ट करता है, वह म्लेच्छ है। ।।१६।।

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराभिमर्शनम् ।
निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥ ।।१७।।

देवता का द्रव्य और गुरु का द्रव्य जो हरता है, पर-स्त्री से प्रसंग करता है तथा सब प्राणियों के धन से निर्वाह कर लेता है, वह ब्राह्मण चांडाल कहलाता है। ।।१७।।

देयं भोज्यधनं धनं सुकृतिभिर्नो सञ्चयस्तस्य वै
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता ।
अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात्सञ्चितं
निर्वाणादिति नैजपादयुगलं धर्षन्त्यहो मक्षिकाः॥ ।।१८।।

एक गुणवान व्यक्ति को वह सब कुछ दान में देना चाहिए जो उसकी आवश्यकता से अधिक है। केवल दान के कारण ही कर्ण, बाली और राजा विक्रमादित्य कीर्ति आज तक विद्यमान है। दान भोग से रहित अत्यधिक संचय के कारण मधुमखियों का मधु नष्ट हो जाता है और वे मधु का नाश होने के कारण ही दोनों पांवों को घिसा करती हैं या दोनों हाथ मला करती हैं । ।।१८।।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे एकादशोऽध्यायः॥



चाणक्य नीति दर्पण:

द्वादशोऽध्याय:

सानन्दं सदनं सुतास्तु सुधियः कान्ता प्रियालापिनी इच्छापूर्तिधनं
स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञापराः सेवकाः ।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे साधोः सङ्गमुपासते च
सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥ ।।१।।

वह गृहस्थ भगवान् की कृपा को पा चुका है जिसके घर में आनंददायी वातावरण है। जिसके बच्चे गुणी है। जिसकी पत्नी मधुर वाणी बोलती है। जिसके पास अपनी जरूरते पूरा करने के लिए पर्याप्त धन है। जो अपनी पत्नी से सुखपूर्ण सम्बन्ध रखता है। जिसके नौकर उसका कहा मानते है। जिसके घर में मेहमान का स्वागत किया जाता है। जिसके घर में मंगल दायी भगवान शिव की पूजा रोज की जाती है । जहाँ स्वाद भरा भोजन और पान किया जाता है । जिसे भगवान् के भक्तो की संगति में आनंद आता है। ।।१।।

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च यच्छ्रद्धया स्वल्पमुपैति दानम् ।
अनन्तपारं समुपैति राजन्य द्दीयते तन्न लभेद्विजेभ्यः ॥ ।।२।।

जो एक संकट में पड़े ब्राह्मण को श्रद्धा से थोड़ा भी दान देता है, उसे बदले में विपुल लाभ होता है. अत: हे राजन, योग्य ब्राह्मण को दिए हुए दान का फल असंख्य गुना होकर वापस मिलता है। ।।२।।

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने प्रीतिः साधुजने स्मयः
खलजने विद्वज्जने चार्जवम् ।



शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता इत्थं ये पुरुषा कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥ ।।३।।

वे लोग जो इस दुनिया में सुखी हैं - जो अपने संबंधियों से अनुकूलता, दुसरे जनों पर दया, दुर्जनों से दुष्टता, साधुओं से प्रीति, नीच लोगों से अभिमान, विद्वानों से सरलता, शत्रुओं से शूरता, गुरुजनों से क्षमा, स्त्रियों से धूर्तता आदि कलाओं में कुशल होते हैं। ।।३।।

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ ।
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुङ्गं शिरो रे रे जम्बुक मुञ्च मुञ्च सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः ॥ ।।४।।

जिनके हाथ दान से रहित हैं, कान वेद और शास्त्र के विरोधी है, नेत्रों ने साधू का दर्शन नहीं किया, पांवों ने तीर्थ गमन नहीं किया, अन्याय से अर्जित धन से पेट भर गया है और गर्व से सिर ऊँचा हो रहा है, अरे सियाररूपी नीच मनुष्य ऐसे निंदनीय शरीर को शीघ्र छोड दे। ।।४।।

येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्ति भक्तिर्नराणां
येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा ।
येषां श्रीकृष्णलीलाललितरसकथासादरौ नैव कर्णौ
धिक्तान्धिक्तान्धिगेतान्कथयति सततं कीर्तनस्थो मृदङ्गः ॥ ।।५।।

जो माँ यशोदा के लाडले, भगवान् श्री कृष्ण के चरण कमलों की आराधना और राधा रानी के गौरव का गुणगान नहीं करते; जिनके कान कृष्ण लीला का श्रवण नहीं करते, उन लोगों को धिक् है, धिक् है, धिक् है ऐसा कीर्तन का मृदंग सदा कहा करता है । ।।५।।



पत्रं नैव यदा करीलविटपे दोषो वसन्तस्य किं नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ।
वर्षा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥ ।।६।।

बसंत ऋतू क्या अपराध यदि बांस पर पत्ते नहीं आते। सूर्य का क्या दोष यदि उल्लू दिन में देख नहीं सकता। बादलों का क्या दोष है यदि बारिश की बूंदे चातक पक्षी की चोंच में नहीं गिरती। जो ब्रह्मा ने जन्म के समय ही निर्धारित कर दिया है उसे कोई कैसे बदल सकता है।

सत्सङ्गाद्भवति हि साधुना खलानां साधूनां नहि खलसङ्गतः खलत्वम् ।
आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते मृद्गन्धं नहि कुसुमानि धारयन्ति ॥ ।।७।।

एक दुष्ट के मन में सद्‌गुणों का उदय हो सकता है यदि वह साधु से सत्संग करता है। परन्तु दुष्ट का संग करने से साधू दूषित नहीं होता, वैसे ही जैसे जमीन पर जो फूल गिरता है उससे धरती सुगन्धित होती है लेकिन पुष्प धरती की गंध को ग्रहण नहीं करता। ।।७।।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥ ।।८।।

साधुओं का दर्शन ही पुण्य है, इस कारण कि साधू तीर्थरूप हैं। तीर्थ समय से फल देता है, परन्तु साधुओं का संग शीघ्र ही मनोरथ पूर्ण कर देता है। ।।८।।

विप्रास्मिन्नगरे महान्कथय कस्तालद्रुमाणां गणः को दाता रजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि ।



को दक्षः परवित्तदारहरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः कस्माज्जीवसि हे सखे विषकृमिन्यायेन जीवाम्यहम् ॥ ।।९।।

एक अजनबी ने एक ब्राह्मण से पूछा. "बताइए, इस शहर में महान क्या है?". ब्राह्मण ने उत्तर दिया की खजूर के पेड़ का समूह महान है। अजनबी ने सवाल किया की यहाँ दानी कौन है? उत्तर मिला के वह धोबी जो सुबह कपडे ले जाता है और शाम को लौटाता है। प्रश्न हुआ यहाँ सबसे काबिल कौन है? उत्तर मिला यहाँ हर कोई दुसरे के धन और स्त्री के हरण में सब ही कुशल हैं। प्रश्न हुआ की आप ऐसी जगह रह कैसे लेते हो? उत्तर मिला की जैसे एक विष का कीड़ा विष ही में जीता है। ।।९।।

न विप्रपादोदककर्दमाणि न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि ।
स्वाहास्वधाकारविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥ ।।१०।।

जिस घर में ब्राह्मणों के पांवो का कीचड न हुआ हो, और न वेद शास्त्र के शब्द की गर्जना और जो स्वः-स्वधा से रहित हो, उस घर को शमशान के समान समझना चाहिए। ।।१०।।

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा ।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ॥ ।।११।।

सत्य मेरी माता है, अध्यात्मिक ज्ञान मेरा पिता है, धर्माचरण मेरा बंधू है, दया मेरा मित्र है, शांति मेरी स्त्री है, क्षमा मेरा पुत्र है ये ही छ: मेरे परिवार में के लोग हैं। ।।११।।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ ।।१२।।



हमारे शरीर नश्वर हैं, धन भी सदा नहीं रहता, मृत्यु सदा हमारे निकट रहती है, अतः हमें केवल पुण्य कर्मों का संग्रह करना चाहिए। ।।१२।।

निमन्त्रोत्सवा विप्रा गावो नवतृणोत्सवाः ।
पत्युत्साहयुता भार्या अहं कृष्णचरणोत्सवः ॥ ।।१३।।

निमंत्रण ब्राह्मणों का उत्सव, नवीन घास गायों का उत्सव और पति उत्साह से स्त्रियों का उत्सव होता है। मेरे लिए तो श्री कृष्ण के चरण ही उत्सव हैं। ।।१३।।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ट्रवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्,इतः ॥ ।।१४।।

जो दूसरे की स्त्री को अपनी माता मानता है, दूसरे को धन को मिटटी का ढेला और सब प्राणियों को अपने सामान जो देखता है, उसी को सही दृष्टी प्राप्त है और वही विद्वान है। ।।१४।।

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता मित्रेऽवञ्चकता गुरौ
विनयता चित्तेऽतिमभीरता ।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञानता रूपे सुन्दरता शिवे
भजनता त्वय्यस्ति भो राघव ॥ ।।१५।।

धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान में उत्साह, मित्र के विषय में निष्छलता, गुरु से नम्रता, अंत:करण में गंभीरता, आचार में पवित्रता, गन में रसिकता, शस्त्रों का विशेष ज्ञान, रूप में सुंदरता और भगवान



शिव की भक्ति, हे राम, हे राघव ! यह सब गुण आप में ही हैं। ।।१५।।

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः सूर्यस्तीव्रकरः शशी च विकलः क्षारो हि वारां निधिः ।
कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नन्दी पशुः कामगो नैतांस्ते तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा दीयते ॥ ।।१६।।

कल्प तरु एक लकड़ी है, सुवर्ण का सुमेरु अचल पर्वत है, चिंता मणि पत्थर है, सूर्य में ताप है, चन्द्रमा घटता बढ़ता रहता है, अपार समुद्र खारा है, काम शरीर हीन है , महाराज बलि कुल में पैदा हुए, कामधेनु एक पशु है। हे भगवान राम ! आपकी तुलना इनके साथ नहीं हो सकती; फिर आपको कौन सी उपमा दी जाये। ।।१६।।

विद्या मित्रं प्रवासे च भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥ ।।१७।।

विद्या सफ़र में हमारा मित्र है, पत्नी घर पर मित्र है, औषधि रुग्ण व्यक्ति की मित्र है और मरते वक्त पुण्य कर्म ही मित्र है। ।।१७।।

विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम् ।
अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत कैतवम् ॥ ।।१८।।

शिष्टाचार राज परिवारों से , प्रिय वचन पंडितो से, असत्य भाषण जुआरियों से और छल स्त्रियों से सीखना चाहिए। ।।१८।।

अनालोक्य व्ययं कर्ता अनाथः कलहप्रियः ।
आतुरः सर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति ॥ ।।१९।।



बिना सोचे समझे खर्च करने वाला, सहायक के न रहने पर भी कलह में प्रीति रखने वाला और सब जाती की स्त्रियों में भोग की इच्छा रखने वाला पुरुष शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। ।।१९।।

नाहारं चिन्तयेत्प्राज्ञो धर्ममेकं हि चिन्तयेत।
आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते ॥ ।।२०।।

एक विद्वान व्यक्ति को अपने भोजन की चिंता नहीं करनी चाहिए, उसे सिर्फ अपने धर्म को निभाने की चिंता करनी चाहिए। हर व्यक्ति का भोजन जन्म से तय हो चुका है। ।।२०।।

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासङ्ग्रहणे तथा ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत॥ ।।२१।।

जिसे धन, अनाज और विद्या अर्जित करने में और भोजन करने में कोई शर्म नहीं आती वह सदा सुखी रहता है। ।।२१।।

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥ ।।२२।।

जैसे बूंद बूंद से सागर बनता है, वैसे ही बूंद बूंद से ज्ञान, गुण और संपत्ति प्राप्त होते है। ।।२२।।

वयसः परिणामेऽपि यः खलः खल एव सः ।
सम्पक्कमपि माधुर्यं नोपयातीन्द्रवारुणम् ॥ ।।२३।।



जो व्यक्ति अपने बुढ़ापे में भी मूर्ख है वह सचमुच ही मुर्ख है। उसी प्रकार जिस प्रकार जैसे इन्द्र वरुण का फल कितना भी पके मीठा नहीं होता। ।।२३।।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे द्वादशोऽध्यायः॥

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

अप्रिय पथ्य कहने और सुनने वाले दोनों ही दुर्लभ होते हैं। हितकारी कटु आलोचना सुनना जैसे किसी एक व्यक्ति के लिये हितकारी तथा कल्याणकारी है इसी प्रकार वह समाज, राष्ट्र तथा राज्यसंस्था के लिये भी तो कल्याणकारी है।



चाणक्य नीति दर्पणः

त्रियोदशोऽध्यायः

मुहूर्तमपि जीवेच्च नरः शुक्लेन कर्मणा ।
न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना ॥ ।।१।।

उत्तम कर्म से मनुष्यों का मुहूर्त भर का जीन अभी श्रेष्ठ, परन्तु दोनों लोकों के विरोधी से कल्प भर का जीना भी उत्तम नहीं है। ।।१।।

गते शोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत।
वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः ॥ ।।२।।

हम उसके लिए ना पछताए जो बीत गया। हम भविष्य की चिंता भी ना करें। विवेक और बुद्धि रखने वाले लोग केवल वर्तमान में जीते है। ।।२।।

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषाः पिता ।
ज्ञातयः स्नानपानाभ्यां वाक्यदानेन पण्डिताः ॥ ।।३।।

देवता, सत्पुरुष और पिता और माता पिता भाव से , निकट और दूर के रिश्तेदार आदर सम्मान से और पंडित प्रिय वचन से संतुष्ट हो जाते हैं। ।।३।।

आयु: कर्म च वितं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतनि च सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिन॥ ।।४।।



जब बच्चा माँ के गर्भ में होता है तो यह पांच बातें निश्चित हो जाती हैं - कितनी आयु होगी, वह क्या कर्म करेगा, कितना धन और ज्ञान अर्जित करेगा और मृत्यु कब होगी। ।।४।।

अहो बत विचित्राणि चरितानि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्ति च ॥ ।।५।।

देखिये क्या आश्चर्य है? महात्मा धन को तो तिनके की तरह मामूली समझते है परन्तु जब वे उसे प्राप्त कर लेते हैं तो उसके भार से और विनम्र होकर झुक जाते हैं। ।।५।।

यस्य स्नेहो भयं तस्य स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानि दुःखानि तानि त्यक्त्वा वसेत्सुखम् ॥ ।।६।।

जिसको जिसमे प्रीति रहती है, उसको उसी का भय रहता है। स्नेह दुःख का भजन और सभी सुखों का कारण है। अतः उसे छोड़ कर सुखी होना उचित है। ।।६।।

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥ ।।७।।

भविष्य में आने वाली विपत्ति के लिए पहले से उपाय करने वाला और जिसकी बुद्धि में विपत्ति आ जाने पर शीघ्र उपाय भी आ जाता है, यह दोनों सुख से बढ़ते हैं और जो यह सोचता है की भाग्यवश जो होनेवाला है वह होकर ही रहेगा, वह विनष्ट जो जायेगा। ।।७।।

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥ ।।८।।



यदि राजा पुण्यात्मा है तो प्रजा भी वैसी ही होती है। यदि राजा पापी है तो प्रजा भी पापी है। यदि वह सामान्य है तो प्रजा सामान्य है, प्रजा के सामने राजा ही उदाहरण होता है और वो उसका अनुसरण करती है। ।।८।।

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम् ।
मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः ॥ ।।९।।

धर्म रहित होकर जीना मृतक के समान है। धर्मात्मा पुरुष मरने पर भी चिरंजीवी होता है; क्योंकि उसकी कीर्ति सदा अमर रहती है। ।।९।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ ।।१०।।

जिस व्यक्ति ने न ही कोई ज्ञान संपादन किया, ना ही पैसा कमाया, मुक्ति के लिए जो आवश्यक है उसकी पूर्ति भी नहीं की, उसका जीवन बकरी की गर्दन से झूलने वाले स्तनों के तरह व्यर्थ है। ।।१०।।

दह्यमाना: सुतीव्रेण नीचा: परयशोऽग्निना।
अशक्ता सततपदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते।। ।।११।।

दुर्जन दूसरों की कीर्ति की निंदा करते हैं, असहनीय अग्नि से जलकर जब वह दूसरों की बराबरी नहीं कर सकते, तब उनकी निंदा करने लगते हैं। ।।११।।

बन्धाय विषयासङ्गो मुक्त्यै निर्विषयं मनः ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥ ।।१२।।



विषय में आसक्त मन बंधन का और विषय से रहित मुक्ति का हेतु है, अत: मन ही मनुष्यों के बंधन या मुक्ति का कारण है। ।।१२।।

देहाभिमाने गलितं ज्ञानेन परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥ ।।१३।।

जो आत्म स्वरुप का बोध होने से अपनी देह पर अभिमान नहीं करता, वह हरदम समाधी में ही रहता है भले ही उसका शरीर कहीं भी चला जाए। ।।१३।।

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य संपद्यते सुखम् ।
दैवायत्तं यतः सर्वं तस्मात्संतोषमाश्रयेत॥ ।।१४।।

मन का चाहा हुआ हर सुख किसी नो नहीं मिलता, सब कुछ भगवान के हाथ में है। अतः हमें संतुष्ट रहकर जीवन व्यतीत करना चाहिए। ।।१४।।

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम् ।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ ।।१५।।

जिस प्रकार एक गाय का बछड़ा, हजारो गायो में अपनी माँ के पीछे चलता है उसी तरह कर्म मनुष्य के पीछे चलते है। ।।१५।।

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम् ।
जनो दहति संसर्गाद्वनं सङ्गविवर्जनात॥ ।।१६।।



अस्थिर कर्म करने वाले मनुष्य को कोई सुख नहीं मिलता चाहे वन में में रहे या लोगों के बीच क्योंकि लोगो के मिलने से उसका हृदय जलता है और वन में वह लोगों से न मिल पाने के कारण। ।।१६।।

खनित्वा हि खनित्रेण भूतले वारि विन्दति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ ।।१७।।

यदि आदमी बेलचे का सहारा ले तो भूमिगत पानी भी निकाल सकता है. उसी तरह विद्यार्थी गुरु की सेवा के सहारे गुरु की ज्ञान निधि है को प्राप्त कर सकता है। ।।१७।।

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधियश्चार्या सुविचार्यैव कुर्वते ॥ ।।१८।।

हमें अपने कर्म का फल मिलता है और हमारी बुद्धि सदैव पूर्व कर्मों से प्रेरित रहती है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति सोच विचार कर कर्म करते हैं। ।।१८।।

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दते ।
श्वानयोनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥।।१९ ।।

जो एक अक्षर भी देने वेक गुरु की वंदना नहीं करता वह कुत्ते की सौ योनि भोग कर चांडाल बन कर जन्मता है। ।।१९ ।।

युगान्ते प्रचलेन्मेरुः कल्पान्ते सप्त सागराः ।
साधवः प्रतिपन्नार्थान्न चलन्ति कदाचन ॥ ।।२०।।



जब युग का अंत हो जायेगा तो मेरु पर्वत हिल जाएगा, जब कल्प का अंत होगा तो सातों समुद्र का पानी विचलित हो जायगा, परन्तु साधू कभी भी अपने अध्यात्मिक मार्ग से कभी विचलित नहीं होगा। ।।२०।।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे त्रियोदशोऽध्यायः॥

उपरि करावल धारा काराः कुरा भुजङ्गमपुङ्गवः ।।

अन्तः साक्षाद् दाक्षादीक्षागुरवो जयन्ति केऽपि जनाः ॥

कुछ उदारकर्मी मनुष्य ऊपर से देखने में तो विषधर सर्प तथा असिधारा की लपलपाती कठोर अकृति के समान महा क्रूर बनकर रहते हैं परन्तु इन लोगों की अन्तरमा लोक हित के माधुर्य में इतनी अधिक रहती है मानों इन्होंने द्राक्षाओं से माधुर्यकी दीक्षा ले रक्खी हो । कर्म के तो कठोर परन्तु हृदयके मधुर विराट कम लोग संसार में अति न्यून होते हैं। आचार्य चाणक्य इसी प्रकार के लोगोंसे थे ।



चाणक्य नीति दर्पण:

चतुर्दशोऽध्यायः

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥ ।।१।।

इस पृथ्वी पर अन्न, जल और मीठे वचन ये ही असली रत्न है। मूर्खो को लगता है पत्थर के टुकड़े रत्न है। ।।१।।

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् ।
दारिद्र्यदुउखरोगाणि बन्धनव्यसनानि च ॥ ।।२।।

गरीबी,रोग, दुःख, विपत्ति और एक बंदी का जीवन यह सब व्यक्ति के किए हुए पापो का ही फल है। ।।२।।

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही ।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥ ।।३।।

आप धन, मित्र, पत्नी और राज्य गवां कर पुन: प्राप्त किये जा सकते हैं परन्तु यदि आप अपना शरीर गवां देते है तो वह वापस नहीं मिलता। ।।३।।

बहूनां चैव सत्त्वानां समवायो रिपुञ्जयः ।
वर्षाधाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते ॥ ।।४।।



यदि हम अधिक संख्या में एकत्र हो जाए तो दुश्मन को हरा सकते हैं, उसी प्रकार जैसे घास के तिनके एक दुसरे के साथ रहने के कारण भारी बारिश में भी क्षय नहीं होते। ।।४।।

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥ ।।५।।

पानी पर तेल, दुष्ट व्यक्ति को बताया हुआ राज, सुपात्र को दिया हुआ दान और बुद्धिमान व्यक्ति को पढ़ाये हुए शास्त्र, यदि यह सब थोड़े भी हों तो भी अपने स्वभाव के कारण तेजी से फैलते है। ।।५।।

धर्माख्याने श्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत।
सा सर्वदैव तिष्ठेच्चेत्को न मुच्येत बन्धनात॥ ।।६।।

मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है यदि वह अपने मन की अवस्था को एक सामान बनाए रखे जब वह धर्मोपदेश सुनता है, जब वह शमशान घाट में होता है और जब वह बीमारी से ग्रस्त होता है। ।।६।।

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ।
तादृशी यदि पूर्वं स्यात्कस्य न स्यान्महोदयः॥ ।।७।।

वह मनुष्य पूर्णता प्राप्त कर सकता है यदि वह मन की अवस्था को कोई कर्म करते समय अथवा पश्चाताप में भी एक सामान बनाये रखता है। ।।७।।

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये ।
विस्मयो नहि कर्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा ॥ ।।८।।



दान में, तप में, शूरता में, विज्ञता में, सुशीलता में और नीति में विस्मय नहीं करना चाहिए, यह संसार दिखाई न देने वाले अतिदुर्लभ रत्नों से भरी पड़ी है। ।।८।।

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः ।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः ॥ ।।९।।

वह जो हमारे ह्रदय में रहता, वास्तव में बहुत दूर होने पर भी हमारे समीप है। परन्तु जो हमारे समीप है, परन्तु हमारे ह्रदय में नहीं है वह हमसे बहुत दूर है । ।।९।।

यस्माच्च प्रियमिच्छेत्तु तस्य ब्रूयात्सदा प्रियम् ।
व्याधो मृगवधं कर्तुं गीतं गायति सुस्वरम् ॥ ।।१०।।

यदि हम किसी से कुछ पाना चाहते है तो उससे मधुर वचन बोलने उसी प्रकार उचित हैं जैसे एक शिकारी व्याघ, मृग के शिकार के समय मधुर गीत गाता है। ।।१०।।

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदा ।
तस्मादाहृत्य दातव्या भूमिः पार्थिवसत्तम ॥ ।।११।।

जो व्यक्ति राजा से, अग्नि से, धर्म गुरु से और स्त्री से बहुत परिचय बढ़ाता है वह विनाश को प्राप्त होता है। जो व्यक्ति इनसे पूर्ण रूप से अलिप्त रहता है, उसे अपना भला करने का कोई अवसर नहीं मिलता। अतः इनसे सुरक्षित दूरी बनाकर सम्बन्ध रखना चाहिए। ।।११।।

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खाः सर्पा राजकुलानि च ।
नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट॥ ।।१२।।



अग्नि, पानी, औरत, मूर्ख, सांप और राज परिवार के सदस्यों के साथ हमेशा सावधानीपूर्वक रहना चाहिए, क्योंकि यह क्षण भर में हमें मृत्यु तक पहुंचा सकते हैं। ।।१२।।

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्मः स जीवति ।
गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम् ॥ ।।१३।।

वही व्यक्ति जीवित है जो गुणवान है और पुण्यवान है। लेकिन जिसके पास धर्म और गुण नहीं उसे कोई आशीर्वाद प्राप्त नहीं होता। ।।१३।।

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
पुरा पञ्चदशास्य्भ्यो गां चरन्ती निवारय ॥ ।।१४।।

यदि आप दुनिया को एक काम करके जीतना चाहते हो तो इन पंद्रह को अपने काबू में रखें और अपने ऊपर हावी न होने दें। पांच इन्द्रियों के विषय - दृष्टि, श्रवण, गंध, स्वाद और स्पर्श। पांच इन्द्रिय - आँख, कान, नाक, जिव्हा, त्वचा और पांच कर्मेन्द्रिय - हाथ, पाँव, मुंह, जननेंद्रिय और गुदा। ।।१४।।

प्रस्तावसदृशं वाक्यं प्रभावसदृशं प्रियम् ।
आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पण्डितः ॥ ।।१५।।

वही ज्ञानी है, जो प्रसंग के अनुरूप बात करता है, अपनी शक्ति के अनुरूप दूसरों की सेवा प्रेम से करता है और जिसे अपने क्रोध की मर्यादा का पता है। ।।१५।।



एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः ।
कुणपं कमिनी मांसं योगिभिः कामिभिः श्वभिः ॥ ।।१६।।

एक ही वस्तु देखने वालो की योग्यता के अनुरूप विभिन्न दिखाई देती है। तप करने वाले को किसी वस्तु को देखकर कोई कामना नहीं होती, कामुक व्यक्ति को हर वास्तु में स्त्री दिखती है, कुत्ते को हर वस्तु में मांस दिखता है। ।।१६।।

सुसिद्धमौषधं धर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुनम् ।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्न प्रकाशयेत॥ ।।१७।।

बुद्धिमान व्यक्ति तो यह बातें किसी को नहीं बतानी चाहियें - वह औषधि उसने कैसे बनायीं जो अच्छा काम कर रही है, परोपकार जो उसने किया, उसके घर के झगडे, उसकी व्यक्तिगत बाते, उसने जो ठीक से न पका हुआ खाना खाया और अभद्र भाषा जो उसने सुनीं। ।।१७।।

तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलैश्चैव वासराः ।
यावत्सर्वजनानन्ददायिनी वाक्प्रवर्तते ॥ ।।१८।।

जब तक सभी को आनंद देने वाली वाणी प्रारम्भ नहीं हो जाती तब तक कोयल मौन रहती है। ।।१८।।

धर्मं धनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम् ।
सुगृहीतं च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥ ।।१९।।



धर्म, धन्य, धन्य, गुरु का वचन और औषध, इन सभी का संग्रह करना चाहिए। जो ऐसा नहीं करता है उसका जीवन दुष्कर हो जाता है। ।।१९।।

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यतः ॥ ।।२०।।

कुसंग का त्याग करें और साधू जनो की संगति करें । दिन रात पुण्य करें तथा ईश्वर का नित्य स्मरण करें क्योंकि यस संसार नश्वर है, अनित्य है। ।।२०।।

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे चतुर्दशोऽध्यायः॥

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने ।
विक्रमार्जितसत्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ।।

यह लोकोक्ति चाणक्य जैसे ही महापुरुष के लिये बनी है।
सिंह का वन में कोई राज्याभिषेक नहीं करता और कोई उसे राज्य दीक्षा नहीं देता । अपने लिये अपने भजबल से सम्मानित पद का उपार्जन करने वाला



चाणक्य नीति दर्पणः

पंचदशोऽध्यायः

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु ।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः ॥१॥

वह व्यक्ति जिसका ह्रदय हर प्राणी मात्र के प्रति करुणा से पिघलता है, उसे ज्ञान की, मुक्ति की, सर के ऊपर जटाजूट रखने की और अपने शरीर पर राख मलने की क्या आवश्यकता है । ॥१॥

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा सोऽनृणी भवेत॥२॥

इस संसार में वह निधि नहीं है जो शिष्य को सदगुरु के दिए एक भी अक्षर के ऋण से उऋण कर सके । ॥२॥

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानन्मुखभङ्गो वा दूरतो वा विसर्जनम् ॥३॥

कांटो से और दुष्टों दोनों से बचने का एक ही उपाय है - जूतों से इनका मुँह तोड़ देना या दूर से ही इनका त्याग। ॥३॥

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च ।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥४॥



जो अस्वच्छ कपडे पहनता है, जिसके दांत शुद्ध नहीं, जो अत्यधिक खाता है, जो कठोर शब्द बोलता है और जो सूर्योदय के बाद उठता है, वह लक्ष्मी की कृपा नहीं पा सकता चाहे स्वयं भगवान चक्रपाणि ही क्यों न हों। ॥४॥

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च ।
तमर्थवन्तं पुनराश्रयन्ति अर्थो हि लोके मनुषस्य बन्धुः ॥५॥

मित्र, स्त्री, सेवक, बंधु यह सब धनहीन मनुष्य का त्याग कर देते हैं परन्तु जब वही मनुष्य पुन: धनी हो जाता है तो फिर उसका आशय ले लेते हैं। धन ही इस लोक में मनुष्य का बंधू है। ॥५॥

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं तद्विनश्यति ॥६॥

पाप से कमाया हुआ धन दस वर्ष तक रहता है। ग्यारहवें वर्ष में उसका समूल नाश हो जाता है। ॥६॥

अयुक्तं स्वामिनो युक्तं युक्तं नीचस्य दूषणम् ।
अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शङ्करभूषणम् ॥७॥

अयोग्य वस्तु भी समर्थ को योग्य होती है और योग्य भी दुर्जन को दूषण। अमृत राहु की मृत्यु का कारण हुआ और कालकूट विष भी श्री शंकर के गले का भूषण बना। ॥७॥

तद्भोजनं यद्द्विजभुक्तशेषं तत्सौहृदं यत्क्रियते परस्मिन।
सा प्राज्ञता या न करोति पापं दम्भं विना यः क्रियते स धर्मः ॥८॥



वही भोजन है जो ब्राह्मण को देने के बाद शेष है। वही उपकार है जो दूसरों पर किया जाता है। वही बुद्धिमत्ता है जो पाप करने से रोकती है। वही दान है जो बिना अभिमान के किया जाता है। ॥८॥

मणिर्लुण्ठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते ।
क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः ॥९॥

यदि आदमी को परख नहीं है तो वह अनमोल रत्नों को तो पैर की धूल में पडा हुआ रखता है कांच को भी सिर पर रखता है, परन्तु क्रय विक्रय के समय कांच कांच को कांच का ही मोल मिलता है और मणि को मणि का। ॥९॥

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः स्वल्पश्च कालो बहुविघ्नता च ।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात॥१०॥

शास्त्रों में वर्णित कलाएं अनंत हैं जो हमें सीखनी चाहियें। परन्तु हमारे पास समय कम हैं तथा सीखने के क्षणों में अनेकों विघ्न आते है। अतः वही सीखे जो अत्यंत महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार जैसे हंस पानी छोड़कर उसमे मिला हुआ दूध पी लेता है। ॥१०॥

दूरागतं पथि श्रान्तं वृथा च गृहमागतम् ।
अनर्चयित्वा यो भुङ्क्ते स वै चाण्डाल उच्यते ॥११॥

वह गृहस्थ व्यर्थ है जो दूर से अचानक आये हुए, थके मांदे अतिथि का आदर सत्कार नहीं करता। बिना अतिथि का सत्कार किये रात्रि का भोजन करने वाला गृहस्थ चांडाल के सामान है। ॥११॥

पठन्ति चतुरो वेदान्धर्मशास्त्राण्यनेकशः ।



आत्मानं नैव जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा ॥१२॥

एक व्यक्ति को चारो वेद और सभी धर्मं शास्त्रों का ज्ञान है, परन्तु उसे यदि अपने आत्मा की अनुभूति नहीं हुई तो वह उसी चमचे के समान है जिसने अनेक पकवानों को हिलाया लेकिन किसी का स्वाद नहीं चखा। ॥१२॥

धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवार्णवे ।
तरन्त्यधोगताः सर्वे उपरिष्ठाः पतन्त्यधः ॥१३॥

वह मनुष्य धन्य है, जिन्होंने इस संसार समुद्र को पार करते हुए एक सच्चे ब्राह्मण की शरण ली। उनकी शरणागति ने नौका का काम किया। वह उन यात्रियों की तरह नहीं हैं जिनके एक सामान्य जहाज पर सवार होने के कारण डूबने का खतरा रहता है। ॥१३॥

अयममृतनिधानं नायकोऽप्योषधीनां अमृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः ।
भवति विगतरश्मिर्मण्डलं प्राप्य भानोः परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति ॥१४॥

चन्द्रमा जो अमृत से लबालब है और औषधियों की देवता माना जाता है, यद्यपि वह अमृत के समान अमर और दैदीप्यमान है परन्तु अपनी वैभवता खो देता है जब वह सूर्य के घर जाता है तो क्या एक सामान्य मनुष्य दूसरे के घर जाकर लघुता को नहीं प्राप्त होगा। ॥१४॥

अलिरयं नलिनीदलमध्यगः कमलिनीमकरन्दमदालसः ।
विधिवशात्परदेशमुपागतः कुटजपुष्परसं बहु मन्यते ॥१५॥



यह भ्रमर, जब कमल की नाजुक पंखडियो के मध्य था तब कमल के मीठे मधु का पान करके आलसी बना रहता था, परन्तु अब एक सामान्य कुटज के फूल से अपना भोजन पाता है क्योंकि वह एक ऐसे नए देश में आ गया है जहाँ कमल है ही नहीं, उसे कुटज के पराग ही अच्छे लगते है। ॥१५॥

पीतः क्रुद्धेन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन रोषाद् आबाल्याद्विप्रवर्यैः
स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे ।
गेहं मे छेदयन्ति पर्तिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं तस्मात्खिन्ना सदाहं
द्विजकुलनिलयं नाथ युक्तं त्यजामि ॥१६॥

लक्ष्मी माता भगवान विष्णु से कहती हैं - जिसने (ऋषि अगस्त) रुष्ट होकर मेरे पिता समुद्र (लक्ष्मीजी समुद्र से उत्पन्न हुईं थीं) को पी डाला और जिसने (ऋषि भृगु) क्रोध में भर कर मेरे पति (भगवान विष्णु) के लात मारी और जो ब्राह्मण सदा लड़कपन से मेरी स्पर्धक सरस्वती की कृपा चाहते हैं तथा प्रतिदिन पार्वती के पति (भगवान शिव) की पूजा के निमित्त मेरे गृह कमलपुष को तोड़ते हैं। हे नाथ ! इससे खिन्न होकर मैं उन ब्राह्मणों के घर में कभी निवास नहीं करती। ॥१६॥

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडङ्घ्रिर्निष्क्रियो भवति पङ्कजकोशे ॥१७॥

बंधन तो अनेक हैं, परन्तु प्रेम की रस्सी का बंधन और ही है। सख्त लकड़ी में भी छेद करने में कुशल भ्रमर कमल के कोष में असमर्थ हो जाता है। ॥१७॥

छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्न जहाति गन्धं वृद्धऽपि वारणपतिर्न जहाति
लीलाम।



यंत्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः
क्षीणोऽपिनत्यजतिशीलगुणानकुलीनः।। ॥१८॥

जैसे चन्दन कट जाने पर भी अपनी महक नहीं छोड़ते, हाथी बूढा होने पर भी गजपति विलास नहीं छोड़ता, गन्ना निचोड़े जाने पर भी अपनी मधुरता नहीं छोड़ता। वैसे ही कुलीन जन दरिद्र होने पर भी अपने उन्नत गुणों को नहीं छोड़ता। ॥१८॥

उर्व्यां कोऽपि महीधरो लघुतरो दोर्भ्यां धृतो लीलया तेन त्वं दिवि भूतले च सततं गोवर्धनो गीयसे ।
त्वां त्रैलोक्यधरं वहामि कुचयोरग्रे न तद्गण्यते किं वा केशव भाषणेन बहुना पुण्यैर्यशो लभ्यते ॥१९॥

पृथ्वी पर किसी बहुत छोटे पर्वत को हाथों में अनायास ही धारण करने पर आप स्वर्ग और पृथ्वी दोनों में गोवर्धन कहलाते हो। परन्तु मैं तीनो लोकों के स्वामी आपको केवल कुचों के अग्रभार में धारण करता हूँ, तब भी मुझे कहीं नहीं गिना जाता। हे केशव ! बहुत कहने से क्या , पुण्यों से यश मिलता है। ॥१९॥

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे पंचदशोऽध्यायः॥



चाणक्यनीति दर्पण:

षोडशोऽध्यायः

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ।
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥ ॥१॥

न तो मैंने इस संसार से मुक्त होने के लिए विधि पूर्वक ईश्वर के चरणों का ध्यान किया, न ही स्वर्ग के द्वार खोलने में समर्थ धर्म का ही अर्जन किया, न ही स्वप्न में भी किसी स्त्री का आलिंगन किया। मैं तो केवल अपनी माता यौवन रुपी वृक्ष को काटने का कुल्हाड़ा ही हुआ अर्थात ऐसे लोगों को जन्म देना माता के लिए व्यर्थ ही हुआ जिन्होंने न तो ब्रह्मचर्य धर्म का पालन किया और न ही गृहस्थ धर्म का और न ही कोई परलोक सुधारने के लिए पुण्यों का अर्जन किया। ॥१॥

जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः ॥ ॥२॥

स्त्री की प्रीति एक में नहीं रहती, वह बात किसी एक से करती हैं, विलास से किसी और को देखतीं है तथा ह्रदय में चिंता किसी और की ही करती हैं । ॥२॥

यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मयि कामिनी ।
स तस्या वशगो भूत्वा नृत्येत्क्रीडाशकुन्तवत॥ ॥३॥



जो मूर्ख अविवेक से समझता है की यह आर्कषक लड़की उससे प्रेम करती है, वह उसके वश होकर खेल के पक्षी या कठपुतली समान नुस्के इशारे पर नाचा करता है। ॥३॥

कोऽर्थान्प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कस्यापदोऽस्तं गताः
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राजप्रियः ।
कः कालस्य न गोचरत्वमगमत्कोऽर्थी गतो गौरवं
को वा दुर्जनदुर्गमेषु पतितः क्षेमेण यातः पथि ॥ ॥४॥

धन पाकर अभिमानी कौन न हुआ? किस विषयी की विपत्ति नष्ट हुई ? पृथ्वी में किसके मन को स्त्रियों ने मोहित न किया? कौन सदैव राजा का प्रिय पात्र रहा ? काल पर किसने विजय पायी? कौन सा याचक गुरुता को प्राप्त हुआ तथा किसने दुष्ट के दुर्गुण को पाकर सुख प्राप्त किया ? ॥४॥

न निर्मिता केन न दृष्टपूर्वा न श्रूयते हेममयी कुरङ्गी ।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥ ॥५॥

सोने का मृग न पहले किसी ने देखा और न सुना, तब भी रघुनंदन की तृष्णा उस पर हुई ! विनाश का समय आने पर बुद्धि विपरीत हो जाती है। ॥५॥

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थिताः ।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥ ॥६॥

व्यक्ति को महत्ता उसके गुण प्रदान करते है वह नहीं जिन पदों पर वह काम करता है। क्या एक ऊँचे भवन पर बैठा कौवे को गरुड़ कहा जा सकता है। ॥६॥



गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पदः ।
पूर्णेन्दुः किं तथा वन्द्यो निष्कलङ्को यथा कृशः ॥ ॥७॥

गुणों की ही सब जगह पूजा होती है, बड़ी संपत्ति की नहीं है। पूर्णिमा का सकलंक चन्द्रमा भी क्या वैसा वन्दित होता है जैसा कलंकरहित द्वितीया का दुर्बल। ॥७॥

परैरुक्तगुणो यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ॥ ॥८॥

गुणों से रहित मनुष्य भी महान माना जाता है यदि अन्य उसकी सराहना करते है परन्तु स्वयं को महान कहने वाला देवराज इंद्र भी लघुता को प्राप्त होता है। ॥८॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणा यान्ति मनोज्ञताम् ।
सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम् ॥ ॥९॥

एक बुद्धिमान शुभ गुणों से संपन्न मनुष्य की आभा ऐसे प्रज्वल्लित होती है जैसे एक रत्न सोने के अलंकार में लगाने से और अधिक चमकता है। ॥९॥

गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रयः ।
अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥ ॥१०॥

वह व्यक्ति जो सर्व गुण संपन्न है अपने आप को सिद्ध नहीं कर सकता है जबतक उसे समुचित संरक्षण नहीं मिल जाता। उसी प्रकार जैसे एक मणि तब तक नहीं निखरता जब तक उसे आभूषण में सजाया ना जाए। ॥१०॥



अतिक्लेशेन यद्द्रव्यमतिलोभेन यत्सुखम् ।
परपीडा च या वृत्तिर्नैव साधुषु विद्यते ॥ ॥११॥

अत्यंत पीड़ा से, धर्म के त्याग से तथा तथा अपने शत्रुओं की चापलूसी से जो धन प्राप्त होता है, वह मुझे नहीं चाहिए। ॥११॥

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला ।
या तु वेश्येव सामान्या पथिकैरपि भुज्यते ॥ ॥१२॥

ऐसे धन का कोई लाभ नहीं, जो कुलवधू की तरह केवल एक घर में रहे। धन संपत्ति को वैश्या के समान होना चाहिए जिसका लाभ राह चलते पथिक भी उठा सकें। ॥१२॥

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहारकर्मसु ।
अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च ॥ ॥१३॥

अपने धन, पकवान और स्त्रियों से असंतुष्ट अनेकों मनुष्य पहले भी मर चुके है, अभी भी मर रहे है और भविष्य में भी मरेंगे। ॥१३॥

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः ।
न क्षीयते पात्रदानमभयं सर्वदेहिनाम् ॥ ॥१४॥

दान, यज्ञ, हवन, बलि, यह सब नष्ट हो जाते हैं परन्तु सुपात्र को दिया हुआ दान और सभी जीवों को दिया हुआ अभय दान कभी नष्ट नहीं होता। ॥१४॥

तृणं लघु तृणात्तूलं तूलादपि च याचकः ।
वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति ॥ ॥१५॥



घास का तिनका हल्का है, कपास उससे भी हल्का है, भिखारी तो अनंत गुना हल्का है फिर हवा का झोका उसे उड़ाके क्यों नहीं ले जाता। क्योकि वह डरता है कहीं वह उससे भी न मांग ले। ॥१५॥

वरं प्राणपरित्यागो मानभङ्गेन जीवनात।
प्राणत्यागे क्षणं दुःखं मानभङ्गे दिने दिने ॥ ॥१६॥

अपमानित होकर जीने से मरना श्रेष्ठ है। मरने के समय क्षण भर दुःख होता है परन्तु अपमानित होकर जीने में हर रोज दुःख उठाना पड़ता है। ॥१६॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥ ॥१७॥

सभी जीव मीठे वचनों से आनंदित होते है, अतः हमें सबसे मीठे वचन कहने चाहियें, मीठे वचनो की कोई कमी नहीं है। ॥१७॥

संसारविषवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे ।
सुभाषितं च सुस्वादु सङ्गतिः सज्जने जने ॥ ॥१८॥

इस ससाररुपी विषवृक्ष में दो अमृत रुपी फल लगे हैं - मधुर वचन और सत्संग। ॥१८॥

जन्म जन्म यदभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः ।
तेनैवाभ्यासयोगेन देही चाभ्यस्यते पुनः ॥ ॥१९॥



पहले के जन्मो में किये गए दान, अध्ययन और तप के अभ्यास के योग से मनुष्य इस जन्म में भी पुन: उनका अभ्यास करता है। ॥१९॥

पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम् ।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम् ॥ ॥२०॥

जो विद्या पुस्तकों में और जो धन दूसरों के हाथों में रहता है, काम पड़ने पर न वह विद्या काम में आती है और न ही वह धन। ॥२०॥

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे षोडशोऽध्यायः॥



चाणक्यनीति दर्पण:

सप्तदशोऽध्यायः

पुस्तके प्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ ।
सभामध्ये न शोभते जारगर्भा इव स्त्रियः॥ ॥१॥

वह विद्वान जिसने असंख्य किताबो का अध्ययन बिना सदगुरु के आशीर्वाद से कर लिया वह विद्वानों की सभा में एक सच्चे विद्वान के रूप में नहीं चमकता है। उसी प्रकार जैसे एक व्यभिचारिणी स्त्री सभा के बीच शोभा नहीं पाती। ॥१॥

कृते प्रतिकृतिं कुर्याद्धिंसने प्रतिहिंसनम् ।
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत ॥ ॥२॥

उपकार करने पर हमें प्रत्युपकार करना चाहिए उसी प्रकार दुष्ट के साथ भी दुष्टता करनी चाहिए , ऐसा करने में कोई पाप नहीं है। ॥२॥

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ॥३॥

जो दूर प्रतीत होता है , जिसकी आराधना नहीं हो सकती और जो दूर विद्यमान है, उनको भी हम प्राप्त कर सकते हैं यदि हम तप करें। अत: तप अंत्यंत प्रबल है। ॥३॥

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।



सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ ॥४॥

लोभ से बड़ा दुर्गुण क्या है? परनिंदा से बड़ा पाप क्या है? जो सत्य में प्रस्थापित है उसे तप करने की क्या आवश्यकता है? जिसका ह्रदय शुद्ध है उसे तीर्थ यात्रा की क्या जरूरत है? यदि स्वभाव अच्छा है तो किसी और गुण की क्या आवश्यकता है? यदि कीर्ति है तो अलंकार की क्या जरुरत है? यदि अच्छी विद्या है तो धन की क्या आवश्यकता है ? और यदि अपयश है तो मृत्यु से क्या भय है। ॥४॥

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरा ।
शङ्खो भिक्षाटनं कुर्यान्न दत्तमुपतिष्ठते ॥ ॥५॥

समुद्र सभी रत्नों का भण्डार है, वह शंख का पिता है, देवी लक्ष्मी शंख की बहन है। परन्तु दर दर भीख मांगने वाले हाथ में शंख ले कर घूमते है, इससे यह बात सिद्ध होती है की संपत्ति उसी को प्राप्त होती है जिसने पहले दान दिया है। ॥५॥

अशक्तस्तु भवेत्साधुर्ब्रह्मचारी व निर्धनः ।
व्याधितो देवभक्तश्च वृद्धा नारी पतिव्रता ॥ ॥६॥

शक्तिहीन साधू हो जाता है, धनहीन ब्रह्मचारी, रुग्ण भगवान् का भक्त और वृद्ध स्त्री पतिव्रता हो जाती है। ॥६॥

नान्नोदकसमं दानं न तिथिर्द्वादशी समा ।
न गायत्र्याः परो मन्त्रो न मातुर्दैवतं परम् ॥ ॥७॥



अन्न जल के समान कोई दान नहीं है, द्वादशी के समान कोई तिथि नहीं, गायत्री से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं बढ़कर कोई देवता नहीं है । ॥७॥

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकायास्तु मस्तके ।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वाङ्गे दुर्जने विषम् ॥ ॥८॥

साप के दंश में विष होता है, मक्खी के सिर में, बिच्छू की पूँछ में परन्तु दुष्ट व्यक्ति के समस्त अंगों में विष भरा रहता है। ॥८॥

पत्युराज्ञां बिना नारी ह्युपोष्य व्रतचारिणी ।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत॥ ॥९॥

पति की आज्ञा बिना उपवास व्रत करनेवाली स्त्री अपने पति के आयु को कम करती है और स्वयं नर्क का दर्शन करती है। ॥९॥

न दानैः शुध्यते नारी नोपवासशतैरपि ।
न तीर्थसेवया तद्वद्भर्तुः पदोदकैर्यथा पादशेषं पीतशेषं सन्ध्याशेषं तथैव च । ॥ १०॥

न दान दे कर, न उपवास रख कर और न पवित्र तीर्थ जल के सेवन से स्त्री वैसी शुद्ध होती है, जैसी अपने स्वामी की सेवा तथा चरणामृत से शुद्ध होती है। ॥ १०॥

पद्यशेषं पीतशेषं संध्याशेषं तथैव च।
शुनो मूत्रसमं तोयं पीत्वा चन्द्रायणं चरेत ।। ॥११॥



पाँव धोने से, पीने से जो बच जाता है और संध्या करने पर जो अवशिष्ट जल बच जाता है वह कुत्ते के मूत्र के सदृश्य है, उसको पीने वाले व्यक्ति को चांद्रायण व्रत करके शुद्ध होना चाहिए। ॥११॥

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन ।
मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन ॥ ॥१२॥

दान से हाथ की शोभा बढ़ती है, कंगन से नहीं, स्नान से शरीर शुद्ध होता है, चन्दन से नहीं, सम्मान से तृप्ति होती है, भोजन से नहीं, मुक्ति आध्यात्मिक ज्ञान से होती है तिलक छाप आदि आभूषणों से नहीं। ॥१२॥

नापितस्य गृहे क्षौरं पाषाणे गन्धलेपनम् ।
आत्मरूपं जले पश्यन्शक्रस्यापि श्रियं हरेत॥ ॥१३॥

नाइ के घर में बाल कटवाने से, पत्थर से लेकर चन्दन लेपन करने से से तथा जल में अपना रूप देखने से यदि इंद्र भी हो हो भी उसकी लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। ॥१३॥

सद्यः प्रज्ञाहरा तुण्डी सद्यः प्रज्ञाकरी वचा ।
सद्यः शक्तिहरा नारी सद्यः शक्तिकरं पयः ॥ ॥१४॥

टुंडी फल (कुंदरू)शीघ्र ही बुद्धि हर लेता है और वच (अग्रगंधा) खाने से झटपट बुद्धि आती है, स्त्री तुरंत ही शक्ति हर लेता है और दूध शीघ्र ही बल देता है। ॥१४॥

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम् ।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे ॥ ॥१५॥



जिनके ह्रदय में परोपकार की भावना रहती है उनकी विपत्ति नष्ट होती है और उन्हें हर पग पर सम्पन्नता प्राप्त होती है। ॥१५॥

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनयगुणोपेतः ।
तनये तनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम् ॥ ॥१६॥

जिसकी पत्नी प्रेमभाव रखने वाली और सदाचारी है, जिसके पास संपत्ति विद्यमान है , जिसका पुत्र सदाचारी और अच्छे गुणों से युक्त है , जिसके पुत्र को पुत्र की उत्पात्ति हुई है तो वह देवलोक में जाकर क्या करेगा। देवलोक में इससे अधिक सुख कहाँ है। ॥१६॥

आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥ ॥१७॥

मनुष्यों में और पशुओं में खाना, सोना, भय और मैथुन समान हैं, पशुओं की तुलना में मनुष्यों में विवेक ज्ञान की तुलना में श्रेष्ठ है, अत: जिन मनुष्यों में ज्ञान नहीं है वे पशु हैं। ॥१७॥

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैर्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या ।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषाभृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति ॥
॥१८॥

यदि मदमस्त हाथी अपने माथे से टपकने वाले रस को पीने वाले भ्रमरों को कान हिलाकर उड़ा देता है, तो भौरों ही कुछ भी हानि नहीं होती, वे कमल से भरे हुए तालाब की ओर प्रसन्न होकर चले जाते हैं । परन्तु हाथी के माथे का शोभा कम हो जाता है। अर्थात काल और पृथ्वी अनंत है, गुणी का आदर कहीं न कही हो ही जाता है। ॥१८॥



राजा वेश्या यमश्चाग्निस्तस्करो बालयाचकौ ।
परदुःखं न जानन्ति अष्टमो ग्रामकण्टकः ॥ ॥१९॥

ये आठो कभी दुसरो का दुःख नहीं समझ सकते राजा, वेश्या, यमराज, अग्नि, चोर, बालक, भिखारी और ग्रामवासियों को पीड़ा देकर कर वसूल करने वाला। ॥१९॥

अधः पश्यसि किं बाले पतितं तव किं भुवि ।
रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम् ॥ ॥२०॥

हे बाले, तुम नीचे झुककर क्या देख रही हो? क्या तुम्हारा कुछ जमीन पर गिर गया है? तब स्त्री ने कहा - हे मूर्ख! तू नहीं जानता कि, मेरा तरुणता रुपी मोती न जाने कहाँ चला गया। ॥२०॥

व्यालाश्रयापि विकलापि सकण्टकापि वक्रापि पङ्किलभवापि दुरासदापि ।
गन्धेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तारेको गुणः खलु निहन्ति समस्तदोषान॥ ॥२१॥

हे कमल के फूल ! तुममे तो कीड़े रहते है., तुमसे ऐसा कोई फल भी नहीं बनता जो खाया जाय, तुम्हारे पत्ते काटो से ढके है, तुम टेढ़े होकर बढ़ते हो, कीचड़ में खिलते हो, कोई तुम्हे आसानी से पा नहीं सकता, परन्तु तुम्हारी अतुलनीय खुशबु के कारण दुसरे पुष्पों की तरह सभी को प्रिय हो। अतः केवल एक ही गुण समस्त दोषों का नाश का देता है। ॥२१॥



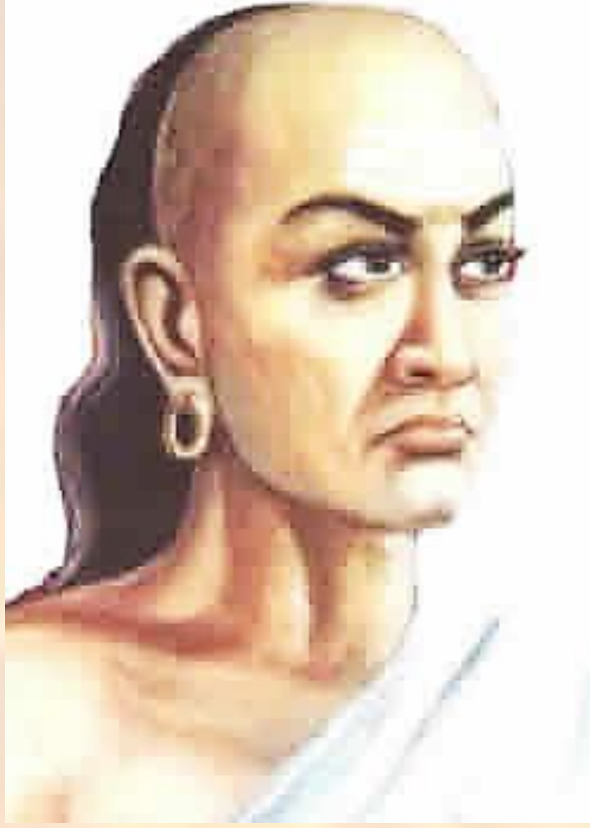
यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥ ॥२२॥

यौवन, धन की अधिकता, प्रभुता एवं अविवेक। इनमे से एक का भी होना अनर्थ का कारण होता है। लेकिन जिनमे ये चारों हो उनका क्या ही कहना। ॥२२॥

॥इति चाणक्यनीतिदर्पणे सप्तदशोऽध्यायः॥

॥॥ इति श्रीचाणक्यनीतिदर्पण:सम्पूर्णम॥॥





संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय:।।